योग प्रशिक्षण
कनिष्ठ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 2.5

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

योग प्रशिक्षण कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

श्री अभिजीत राजपूत

एम०ए०, पीजीडीवाई.एड (योग शिक्षक)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : श्री नरेन्द्र सोलंकी

चित्राङ्कन : श्रीमती प्रीति मेहता

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN : मूल्य :

संस्करण : 2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

योग प्रशिक्षण कनिष्ठ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥ (भगवद्गीता 2.50)

योग भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति का अभिन्न अङ्ग है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों एवं पुराणों में योगविषयक अवधाराणाएँ प्रचुरता में पाई जाती है। योग को आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन एवं अध्यात्म को जोड़ने की एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। यह हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त वह सर्वकल्याणमयी विधा है, जिसके अभ्यास एवं अनुसरण के द्वारा मानव समाज का समग्र विकास सम्भव है।

आज के इस आधुनिक युग में चारों ओर दूषित एवं कोलाहलपूर्ण वातावरण बना हुआ है, जहाँ हम पर्यावरण से शुद्ध प्राणवायु कम, वरन् फ़ैक्ट्रियों तथा वाहनों आदि से निकली विषैली गैसों को अधिक ग्रहण कर रहे हैं। शुद्ध, सात्विक एवं सुपाच्य भोजन का स्थान हानिकारक रसायनों द्वारा पक्व फल-सब्जियों, जंक फ़ूड तथा डिब्बाबन्द भोज्य पदार्थों ने ले लिया है। आज मनुष्य वैदिक तथा योगमय जीवनचर्या, व्यायाम, आहार-विहार-सदाचार जैसे परम् अनुकरणीय पथ को विस्मृत कर अनियमित जीवनशैली जैसे दिशाहीन मार्ग की ओर प्रवृत्त हो चुका है, जिसके कारणवश मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति का ह्रास हो रहा है। इस प्रकार मानव जीवन एवं सम्पूर्ण पर्यावरण कलियुगी प्रभाव का ग्रास बना हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसी विकट परिस्थितियों में, योगविद्या का आश्रय लेना हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यलाभ तथा सामाजिक-आध्यात्मिक विकास का सर्वोत्तम साधन है।

यही कारण है कि विद्यार्थी जीवन में भी योगशिक्षा एवं योग के अभ्यासों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। योगाभ्यासों का उद्देश्य विद्यार्थियों में पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य, अन्तःस्रावी ग्रंथियों एवं चयापचय प्रक्रियाओं, मानसिक एवं सांवेगिक स्थायित्व को सुचारु रूप से विकसित करना है, जिससे विद्यार्थी आत्मानुशासित (**अथ योगानुशासनम् - यो.सू.** 1.1) एवम् आत्मविश्वास से परिपूर्ण होकर जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में सकारात्मक दृष्टिकोण को धारण कर सकें। साथ ही विद्यार्थियों में योगाभ्यासों के माध्यम से सृजनात्मकता का विकास कर किशोरावस्था में होने वाले भावनात्मक द्वन्द्व एवं तनाव प्रबंधन से सम्बन्धित कौशल-क्षमताओं को विकसित करना है। अत: विद्यार्थियों को योग शिक्षण के साथ-साथ उनमें योग प्रशिक्षण प्रदान करने का कौशल विकसित करना भी अत्यावश्यक है, जिससे वे सम्पूर्ण मानव समाज एवं पर्यावरण को अपने योग प्रशिक्षण कौशल द्वारा लाभान्वित कर

सकें। वर्तमान परिपेक्ष्य में योगविद्या से सम्पूर्ण विश्वपटल लाभान्वित हो रहा है। वहीं **'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के अन्तर्गत कौशल एवं उद्यमिता विकास तथा रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों** पर भी विशेष **बल दिया गया है। अतः महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान** (MSRVVP), **शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार तथा राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद** (NCVET), **कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय, भारत सरकार के अन्तर्गत संचालित 'योग प्रशिक्षण– कनिष्ठ सहायक (स्तर-** 2.5)' के माध्यम से विद्यार्थियों में योग प्रशिक्षण के कौशल को विकसित कर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना एवं आत्मनिर्भर बनाना है।

प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत विद्यार्थियों को वैदिक संहिताओं, उपनिषदों एवं योग शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेखित योग के मूल स्वरूप से परिचित कराने का प्रयास किया गया है, जिसमें शास्त्रों के सन्दर्भ के साथ योग के इतिहास, परिभाषाएँ, योग की विभिन्न शाखाएँ, योग एवं आयुर्वेद के सन्दर्भ में स्वास्थ्य की अवधारणा जैसे सैद्धान्तिक विषयों को प्रतिपादित किया गया है। वहीं प्रायोगिक एवं व्यावहारिक पक्षों के अन्तर्गत विभिन्न योगासन, षट्कर्म एवं प्राणायाम अभ्यास, श्रीमद्भागवद्गीता में उल्लेखित योग की अवधारणाएँ, आहार एवं पोषण तथा पथ्यापथ्य विमर्श, वैदिक सूक्त (शिवसंकल्प सूक्त, मेधा सूक्त) पर ध्यान साधना के साथ श्रीमद्भगवद्गीता एवं योग सूत्र (समाधिपाद) को कण्ठस्थीकरण हेतु सम्मिलित किया गया है। पाठकों से अनुरोध है कि पुस्तक से सम्बन्धित किसी संशोधन आदि की स्थिति में अपने अमूल्य सुझाव प्रेषित करें।

अभिजीत राजपूत

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
1.	**योग विद्या का उद्भव एवं इतिहास**	**1 - 8**
1.1.	योग का परिचय	1
1.2.	योग की परिभाषा	1 - 3
1.3.	योग का इतिहास	3 - 6
2.	**योग की विभिन्न शाखाएँ**	**9 - 23**
2.1	कर्मयोग	9 - 11
2.2	ज्ञानयोग	11 - 13
2.3	भक्तियोग	13 - 14
2.4	अष्टाङ्गयोग (राजयोग)	14 - 18
2.5	मन्त्रयोग	19
2.6	हठयोग	19 - 20
3.	**योग एवं स्वास्थ्य**	**24 - 38**
3.1	स्वास्थ्य की परिभाषा एवं लक्षण	24 – 25
3.2	विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य	25 - 27
3.3	स्वास्थ्य के सन्दर्भ में योग का महत्त्व	28 - 29
3.4	हठयोग-सिद्धि के लक्षण	29
3.5	सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा में योग शिक्षा का महत्व	29 - 31
3.6	सर्वांगीण विकास के संदर्भ में अष्टाङ्ग योग शिक्षा की का महत्त्व	31 - 35
4.	**श्रीमद्भगवद्गीता**	**39 – 46**
4.1	भगवद्गीता परिचय	39 - 41
4.2	योगविद्या का उद्भव एवं श्री कृष्ण द्वारा योगविषयक उपदेश से सम्बन्धित उल्लेख	41
4.3	योग की परिभाषाएँ	41 - 42

4.4	दिनचर्या एवं आहार से सम्बन्धित अवधारणा	42
4.5	भगवद्गीता में पथ्य-अपथ्य आहार का वर्णन	42
4.6	ज्ञानप्राप्ति का साधन	43
4.7	भगवद्गीता में ध्यानाभ्यास का वर्णन	43 - 44
5.	**योग के विभिन्न अभ्यास**	**47 - 88**
5.1	योगाभ्यास तथा योगासन के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश।	47 - 48
5.2	सूक्ष्म व्यायाम-अभ्यास-	48 - 54
	❖ नेत्र एवं ग्रीवा (गर्दन), स्कन्ध (कन्धा), कटि (कमर), घुटने एवं पैर।	
5.3	सूर्यनमस्कार (बीज मन्त्र सहित)-	54 - 60
5.4	योगासन -	60 - 86
	❖ योगासन की परिभाषा एवं प्रकार।	
	❖ आसनों के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश	
	ताड़ासन,वृक्षासन,कटिचक्रासन,त्रिकोणासन, पद्मासन, वज्रासन, भुजंगासन, योगमुद्रासन, पवनमुक्तासन, सेतुबन्धासन, उत्तानपादासन, शवासन एवं उक्त आसनों के प्रकारान्तर।	
6.	**प्राणायम एवं षट्कर्म परिचय**	**89 - 99**
6.1	प्राणायाम – परिचय एवं परिभाषा	89 - 90
6.2	प्राणायाम का महत्त्व एवम् उपयोगिता	90
6.3	प्राणायाम के नियम	90 - 91
6.4	प्राणायाम अभ्यास	91 - 94
	❖ अनुलोम-विलोम प्राणायाम	
	❖ भ्रामरी प्राणायाम	
6.5	षट्कर्म परिचय	95 - 97
	❖ कपालभाति	
7.	**आहार एवं पोषण**	**100 - 110**
7.1	परिभाषा	100
7.2	आहार का महत्त्व	100 - 101
7.3	आहार के कार्य	102 – 103

7.4	आहार के गुण	103 - 104
7.5	आहार के प्रकार- योगमय आहार, सन्तुलित आहार	104 - 106
7.6	भोजन सम्बन्धित आवश्यक दिशा निर्देश	106 - 107
8.	**वैदिक ध्यान एवं मन्त्र प्रयोग**	**111 - 120**
8.1	परिचय	111
8.2	शिवसंकल्प सूक्त	112 - 114
8.3	मेधा सूक्त	114 - 115
8.4	योगसूत्र (समाधिपाद)	115 – 119
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची		**121**

इकाई – प्रथम

योगविद्या का उद्भव एवम् इतिहास

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

1.1 **योग परिचय**

1.2 **परिभाषा**

1.3 **योगविद्या का उद्भव एवं इतिहास**

1.1 परिचय

अतिप्राचीनकाल से ही भारतवर्ष एक अध्यात्म प्रधान देश के रूप में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात रहा है। वेदों, उपनिषदों, आध्यात्मिक चिन्तन एवम् ऋषि मुनियों के विशुद्ध ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा भारत चारों दिशाओं को प्रकाशमान बनाए रहा है।

इसी आध्यात्मिक छवि को पल्लवित, पुष्पित एवं जीवन्त बनाए रखने में 'योग' की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रायः 'योग' शब्द से तात्पर्य व्यायाम या किसी विशेष शारीरिक मुद्रा अथवा भाव-भङ्गिमा से लिया जाता है, परन्तु वास्तविकता में योग का अर्थ इससे बहुत अधिक व्यापक है। 'योग' का शाब्दिक अर्थ है - एकात्म। अतः योग हमारे शरीर, मन एवं बुद्धि के पूर्ण सामञ्जस्य हेतु उत्तम साधन है।

योग सम्यक् जीवन का विज्ञान है। अतः इसका समावेश हमारे दैनिक जीवन में अवश्य ही होना चाहिए। यह एक समग्र चिकित्सा-पद्धति भी है, जो हमारे व्यक्तित्व के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि सभी पक्षों को अत्यन्त सकारात्मक-रूप से प्रभावित करती है।

1.2 परिभाषा

योग शरीर, मन एवम् आत्मा की त्रिसूत्रीय संयम व्यवस्था है। यह एक आध्यात्मिक-अनुशासन एवं पूर्ण वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित ज्ञान है, जिसका उल्लेख हमारे वेदों एवम् उपनिषदों में प्राप्त होता है। यह एक समुचित जीवन-पद्धति है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने पुरुषार्थचतुष्टय का दक्षतापूर्वक निर्वाह कर, अपने जीवन के मुख्य लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

संस्कृतवाङ्मय के अनुसार योग शब्द 'युज्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। पाणिनीय-व्याकरण में यह शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

- युजिर् योगे - जोड़ना/मिलना/एकत्र होना ।
- युज् संयमने - सामञ्जस्य ।
- युज् समाधौ - समाधि/कैवल्य ।

अतः उपरोक्त अर्थों का अभिप्राय, मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामञ्जस्य स्थापित कर आत्मसाक्षात्कार करना है, जो मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। व्यष्टि (व्यक्तिगत चेतना) का समष्टि (ब्रह्माण्डीय चेतना) में एकात्म हो जाना ही योग है। मूल-रूप से मानवीय चेतना के उच्च स्तर के एकीकरण को योग कहा जा सकता हैं। पतञ्जलियोगसूत्र के अनुसार -

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

चित्त की वृत्तियों का सर्वथा रुक जाना ही 'योग' है ।

– पतञ्जलियोगसूत्र 1.2

चित्त सदा ही चञ्चल अर्थात् बाह्य विषयों में चलायमान रहता है। कभी चित्त में इच्छाओं एवं कामनाओं का स्फुरण होता है तो कभी लाभ, ईर्ष्या, क्रोध आदि भावों का विकार। इन्हीं विचारों एवम् स्फुरणों को 'वृत्ति' कहा गया है।

अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप को जानने के लिए चित्त (मन) के स्तर पर हो रही अस्थिरता को शान्त करना आवश्यक है, इसी को वृत्ति-निरोध कहते हैं। योग-साधना में चित्तवृत्ति के निरोध के अनेक उपाय वर्णित हैं। इन वृत्तियों के ठहरने से आत्मानुभूति अर्थात् आत्म-स्वरूप का अनुभव होता है, इसे ही 'योग' की स्थिति कहते हैं।

अन्य परिभाषाएँ -

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।

सिद्धि-असिद्धि, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ (हानि), राग-द्वेष, शीत-उष्ण आदि सभी द्वन्द्वों में सर्वत्र समता का भाव रखना ही योग है।

– भगवद्गीता 2.48

मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते ॥

मन के प्रशमन अर्थात् शान्ति का जो उपाय हैं, वह योग कहलाता हैं।

– महोपनिषद् 5.42

योगः कर्मसु कौशलम् ।

कर्मों में कुशलता को ही योग कहा गया है।

– भगवद्गीता 2.50

योगः संयोग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः ।

जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णत: संयोग (एकात्म) ही योग है।

– याज्ञवल्क्य स्मृति 1.44

1.3 योगविद्या का उद्भव एवं इतिहास -

योग विद्या का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। योग की परम्परा कब से अस्तित्व में आई? इसकी निश्चित तिथि का ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। भगवान् श्रीकृष्ण को 'योगेश्वर' कहा गया है। अतः इस विषय में श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि -

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥

मैंने (श्रीकृष्ण) ने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को तथा मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु कालान्तर में वह योग दीर्घ काल तक इस पृथ्वीलोक से लुप्तप्राय हो गया। –भगवद्गीता 4.1-2

इसका अर्थ यह है कि सृष्टि के आरम्भ के साथ ही योग की परम्परा विद्यमान रही है। इस अवधारणा के समान उल्लेख वैदिक वाङ्मय में भी प्राप्त होते है। ऋग्वेद के 10वें मण्डल में कहा गया है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

भावार्थ- हिरण्यगर्भ से सबसे पहले सृष्टि का निर्माण हुआ। उन्होंने पृथ्वी, स्वर्ग आदि सभी को धारण किया। – ऋग्वेद 10.121.1

बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख प्राप्त होता है कि -

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः

हिरण्यगर्भ योग-परम्परा के प्रथम एवं सबसे पुरातन उपदेष्टा हैं।

- बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति 12.5

अतः स्पष्ट है कि सृष्टि के आरम्भ में हिरण्यगर्भ के द्वारा योगविद्या का उपदेश दिया गया।

वैदिक वाङ्मय में योग विषयक अनेक चिन्तन प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के अनुसार -

यस्मादृते न सिद्ध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति॥

भावार्थ- योग के अभाव में विद्वान् का भी कोई यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। - ऋक्संहिता 1.18. 7

स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरन्ध्याम्।

गमद्वाजेभिरा स नः॥

अर्थात् - वही परमात्मा योग के निमित्त अभिमुख हो। अपितु, वही परमात्मा अणिमा आदि सिद्धियों के प्रति हमें प्रेरित करें। - ऋग्वेद 1.5.3

सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई के दौरान प्राप्त योगविषयक भित्ति चित्र

प्राचीनकाल में योग की प्रविधियों को गोपनीय रखा जाता था; उन्हें न लिपिबद्ध किया जाता था एवं न ही सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किया जाता था। गुरु द्वारा मौखिक एवं श्रुति-परम्परा के आधार पर ही योग की प्रविधियों को सिखाया जाता था। इस प्रकार गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा योग को प्रसारित किया जाता था। ईशादि दशोपनिषत् के अतिरिक्त भी अमृतबिन्दूपनिषत्, क्षुरिकोपनिषत्, तेजोबिन्दुपनिषत्, ध्यानबिन्दुपनिषत्, नादबिन्दूपनिषत्, योगकुण्डल्युपनिषत्, योगतत्त्वोपनिषत्, योगचूडामण्युपनिषत्, योगशिखोपनिषत् आदि अनेक योगविद्या के सिद्धान्त एवं प्रायोगिक अभ्यासों के अत्यन्त विस्तृत वर्णन प्राप्त होते हैं।

श्रुति-परम्परा के अन्तर्गत भगवान् शिव, योगविद्या के प्रथम आदिगुरु एवम् आदियोगी माने गए। 2700 ई.पू. सिन्धुघाटी-सभ्यता (हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो) की पुरातात्त्विक खुदाइयों में ऐसी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें शिव एवं पार्वती को विभिन्न योगासनों में अङ्कित किया गया है। शैव एवं शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत योग भी तन्त्र-परम्परा का एक विशिष्ट अङ्ग रहा है। सिन्धु एवं सरस्वती नदी-घाटी-सभ्यता में योगसाधना करती अनेकों मूर्तियाँ, मुहरें, जीवाश्म-अवशेष एवं भित्ति-चित्र इस तथ्य को इङ्गित करते हैं कि योग मानव-सभ्यता के प्रारम्भ से ही अस्तित्वमान रहा है।

तत्पश्चात् दर्शन-काल में लगभग 400 ई.पू. में 'महर्षि पतञ्जलि' द्वारा प्रतिपादित **'योगसूत्र'** की रचना हुई, जिसके द्वारा महर्षि पतञ्जलि ने योगविषयक ज्ञान को सुव्यवस्थित कर लिखित ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान किया। योगसूत्र में योग के स्वरूप, परिभाषा एवं योगविषयक अवधारणाओं पर व्यापक-रूप से चर्चा की गई।

महर्षि पतञ्जलिकृत इसी योगसूत्र में **'अष्टाङ्ग योग'** का उल्लेख किया गया, जिसके अन्तर्गत योग के आठ अङ्ग- **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान** एवं **समाधि** बताए गये हैं। भगवद्गीता, योगवाशिष्ठ, योगयाज्ञवल्क्य आदि ग्रन्थों की रचना भी संभवतः इसी के समकक्ष काल में हुई। इसी प्रकार जैन एवं बौद्धदर्शन के ग्रन्थों में भी योग की अवधारणाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

दर्शनकाल के पश्चात् टीका-काल का उद्भव हुआ। इसी समय योगसूत्र पर महाभाष्य एवं टीकाओं की रचना हुई, जिसमें विज्ञान भिक्षु, वाचस्पति मिश्र आदि टीकाकार प्रमुख हैं। श्रीमज्जगद्गुरु आदिशङ्कराचार्य द्वारा भी **'योग तारावली'** की रचना की गई। इनके अतिरिक्त योगविद्या के प्रसार में रामानुजाचार्य एवं मधवाचार्य का भी अतुलनीय योगदान है। तत्पश्चात् नाथ- सम्प्रदाय का उत्कर्ष हुआ, जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि प्रमुख योगी हुए। कालान्तर में 14वीं शताब्दी में 'हठयोगप्रदीपिका' एवं 17वीं शताब्दी में 'घेरण्ड संहिता' जैसे महान् योग-ग्रन्थों की रचना हुई, जिसमें षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, आहारचर्या, ध्यान आदि के द्वारा शारीरिक के साथ-साथ मन को वश में कर समाधि की अवस्था तक प्राप्त करने से सम्बन्धित चर्चाएँ की गई हैं। ये वही योगाभ्यास एवं योग से सम्बन्धित क्रियाएँ हैं, जिनसे हम वर्तमान समय में परिचित हैं।

इन्हीं योगविषयक शास्त्रों एवं विधियों को जन-जन तक प्रसारित करने में आधुनिक काल के योगियों का भी विशेष योगदान रहा है, जिनमें स्वामी विवेकानन्द, स्वामी कुवल्यानन्द, स्वामी सत्यानन्द

सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, श्री अरविन्द, स्वामी रामदेव, श्री श्री रविशङ्कर आदि प्रमुख हैं। इन्हीं महान् योगियों के योगदान एवं परिणामस्वरूप आज 'योग' पूरे विश्व में प्रसारित हो चुका है। इसी क्रम में 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा (यू. एन. जी. ए.) के 193 सदस्यों की सर्वसम्मति से 21 जून को **'अन्तार्राष्ट्रिय योग दिवस'** के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया।

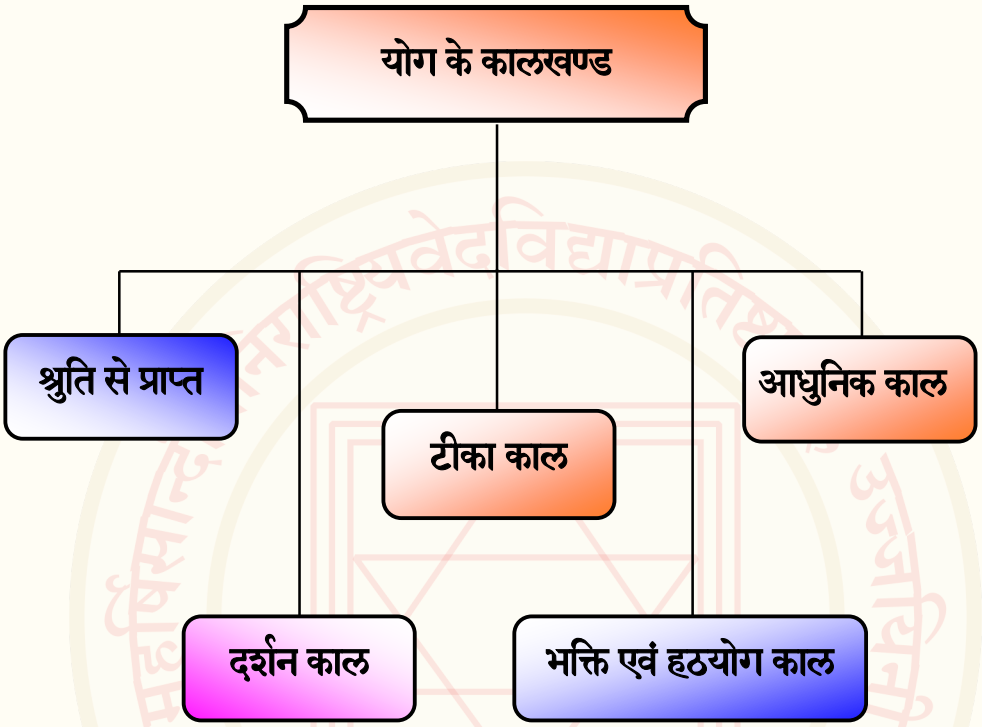

21 जून को ही क्यों मनाया जाता हैं योग दिवस ?

पञ्चाङ्ग के अनुसार, 21 जून पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध का दीर्घतम दिवस माना जाता है, जिसे ग्रीष्म संक्रान्ति भी कहा जाता है। ग्रीष्म संक्रान्ति के पश्चात् सूर्य का दक्षिणायन में प्रवेश होता है। भारतीय शास्त्रों के अनुसार यह स्थिति हमारी आन्तरिक चेतना के विकास तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु विशेष लाभदायक है। अतः 11 दिसम्बर, 2014 को भारत के यशस्वी प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र दामोदारदास मोदी जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा में 21 जून को 'अन्तर्-राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मनाये जाने का प्रस्ताव रखा गया, जिसे 177 सह-समर्थक देशों के 193 सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया। इस प्रकार माननीय प्रधानमन्त्री जी के आग्रह पर 21 जून, 2015 के दिवस को 84 देशों के नागरिकों की प्रतिभागिता के साथ सम्पूर्ण विश्व पटल पर 'प्रथम अन्तर्-राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मनाया गया। इस के उपरान्त प्रतिवर्ष 21 जून विश्वभर में 'अन्तर्-राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

प्रश्नावली

प्रश्न 1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1) योगः ..... कौशलम्। (भाषासु/कर्मसु)

2) योगसूत्र की रचना ..... में हुई। (टीकाकाल/दर्शनकाल)

3) ..... को योग का प्रथम उपदेष्टा कहा है। (हिरण्यगर्भ/पतञ्जलि)

4) 21 जून को **'योग-दिवस'** के रूप में मनाने का प्रस्ताव ..... में पारित किया गया।
(लोकसभा/संयुक्त राष्ट्र महासभा)

5) प्राचीनकाल में योगविद्या ..... थी । (श्रुत / लिखित)

6) योग शरीर एवं मन का ..... है। (सामञ्जस्य / वियोग)

प्रश्न 2) निम्नलिखित वाक्यों में से सत्य/असत्य बताईए-

1) योग विद्या का इतिहास अतिप्राचीन है। (सत्य/असत्य)

2) अष्टाङ्ग योग का उल्लेख योगसूत्र में नहीं किया गया है। (सत्य/असत्य)

3) कर्मों में कुशलता को योग कहा गया है। (सत्य/असत्य)

4) योगाभ्यास वेदाध्ययन हेतु लाभदायक है। (सत्य/असत्य)

5) योगाभ्यास का प्रारम्भ प्रार्थना अथवा मङ्गलाचरण से नहीं करना चाहिए । (सत्य/असत्य)

प्रश्न 3) सही जोड़ियाँ बनाईए-

1)	श्री कृष्ण	योग
2)	प्रत्यहार	योगाभ्यास हेतु उत्तम स्थान
3)	हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता	योगसूत्र
4)	'युज्' धातु	बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति
5)	स्वच्छ वातावरण	योगेश्वर

प्रश्न 4) निम्नलिखित अतिलघु उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1) प्राण के नियमन एवं विस्तार को क्या कहा जाता है?

2) बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति योग के प्रथम वक्ता किन्हें कहा गया है?

3) आसनों में अभ्यास से पूर्व कौन-से अभ्यास करना चाहिए ?

4) योगविद्या के सन्दर्भ में श्री कृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में क्या कहा गया है ?

5) योगसूत्र के अनुसार आसन की परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 5) निम्नलिखित लघु उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1) भगवद्गीता में वर्णित योग की किन्हीं दो परिभाषाओं को लिखिए ?

2) आसनों के अभ्यास से पूर्व सूक्ष्म व्यायाम को करना चाहिए ?

3) संस्कृतव्याकरण के अनुसार योग के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को अर्थ सहित समझाइए।

4) कपालभाति के लाभों को लिखिए।

प्रश्न 6) निम्नलिखित दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

1) योग का विस्तृत परिचय देते हुए गुरुकुल-परम्परा में योगविद्या के महत्त्व एवम् उपयोगिता को समझाइए ?

2) योग के इतिहास का वर्णन कीजिये ?

परियोजना कार्य

- ❖ योग से सम्बन्धित ऐतिहासिक चित्रों को अपनी पुस्तिका में चस्पा करें एवं योग के इतिहास से जुड़े तथ्यों को अपने मित्रों के साथ साझा करें।
- ❖ योगाभ्यास से पूर्व दिशानिर्देशों की सूची बनाएँ एवम् उसीके अनुसार योगाभ्यास हेतु पूर्व तैयारी करें।
- ❖ योगविज्ञान की पाठ्यपुस्तक, विद्यालय के ग्रन्थालय में उपलब्ध विभिन्न योगविषयक ग्रन्थ एवं पुरातत्वालय में सुरक्षित योग की प्राचीनता से सम्बन्धित साक्ष्यों (चित्र, पाण्डुलिपि, मन्त्र सन्दर्भ आदि) से सम्बन्धित जानकारियों का संग्रह करें।

इकाई - द्वितीय

योग का विभिन्न शाखाएँ

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

2.1 **कर्मयोग**

2.2 **ज्ञानयोग**

2.3 **भक्तियोग**

2.4 **अष्टाङ्ग योग (राजयोग)**

2.5 **मन्त्र योग**

2.6 **हठयोग**

प्रिय विद्यार्थियों! आप प्रत्येक दिवस वेदाध्ययन हेतु विद्यालय आते हैं। साथ ही आपके सहपाठी एवं मित्रगण भी आपके ही समान नित्य विद्यालय आते हैं, परन्तु आपने देखा होगा कि गन्तव्य स्थान अर्थात् विद्यालय तक पहुँचने के लिए सभी सहपाठीगण केवल एक ही मार्ग का उपयोग नहीं करतें, बल्कि भिन्न-भिन्न मार्गों से आप सभी विद्यालय पहुँचते हैं अर्थात् विद्यालय (गन्तव्य स्थान) एक होने के पश्चात् भी विद्यालय तक पहुँचने के मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यही तथ्य योग की अवधारणा के साथ भी निहित है। योग रूपी स्थिति एक होने के पश्चात् भी योगाभ्यासी अथवा साधक अपनी अन्तःप्रेरणा के अनुसार योग स्थिति तक पहुँचाने वाली योग की विभिन्न शाखाओं का अनुसरण करते हैं। आइए ! प्रस्तुत अध्याय में हम योग की उन विभिन्न शाखाओं का विवेचन करें।

योग का विभिन्न शाखाएँ

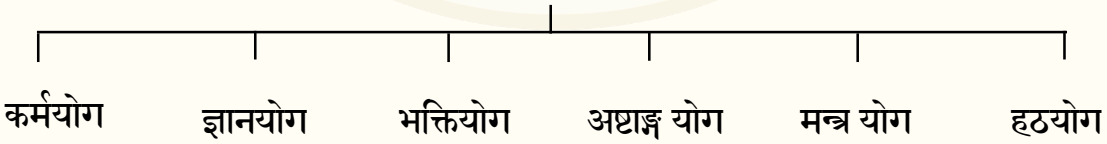

2.1 कर्मयोग-

वह योगमार्ग, जिसमें श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा स्वयं का सर्वांगिण विकास एवम् कल्याण हो, उसे कर्मयोग कहा जा सकता है। परन्तु वे कर्म कौन से हैं? एवं उन कर्मों को करने की क्या विधि है? क्या हमारे द्वारा सभी

कर्तव्य कर्मों को त्याग देना ही कर्मयोग है? नहीं ! ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। इस बात को समझाने हेतु श्री कृष्ण द्वारा भगवद्गीता में कहा गया है कि -

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ *-श्रीमद्भगवद्गीता* 3.5

अर्थात् - निःसंशय कोई भी प्राणी किसी भी क्षण बिना कर्म किए नहीं रह सकता, क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी समुदाय प्रकृति के गुणों के अधीन रहते हुए कर्म करने को बाध्य रहते हैं।

उपर्युक्त श्लोक से हम यह तो जान गए कि अकर्मण्य रहना तो कर्मयोग अथवा कल्याणप्रद नहीं है। कर्म करना तो अनिवार्य है, परन्तु कैसे कर्म किए जाए, जिससे हमारा कल्याण हो सकें? आइए ! जानें।

भगवद्गीता में सात्त्विक कर्म करने वाले मनुष्य को श्रेष्ठ माना है। सात्विक तथा शास्त्रविहित कर्मों को कर्तव्यरूप समझते हुए उनका निष्पादन करने को कहा है।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ।

अर्थात् - जो शास्त्रविधि से नियत किया हुआ तथा कर्तापन के अभिमान एवं फल की आकांक्षा से रहित तथा राग- द्वेष के बिना किया गया कार्य है, वह सात्त्विक कर्म होता है।

- *श्रीमद्भगवद्गीता 18.23*

अतः शास्त्रविहित सात्त्विक कर्मों को बिना किसी स्वार्थ एवं फल की आकांक्षा से रहित होकर **निष्कामभाव** से कर्म करना ही कर्मयोग है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

कर्म करने में ही मनुष्य का अधिकार होता है, उसके फल पर नहीं। अतः मनुष्य को स्वकर्मों का निष्पादन कर्त्तव्य के रूप में समझकर करना चाहिए।

- श्रीमद्भगवद्गीता 2.47

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिध्यसिध्यो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

भावार्थ - हे धनञ्जय ! आसक्ति के भाव को त्याग कार्य की सिद्धि तथा असिद्धि में समानभाव वाला रहते हुए योग में स्थित हुआ कर्त्तव्य रूपी कर्मों को करों, क्योंकि समत्व ही योग है।

- श्रीमद्भगवद्गीता 2.48

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

भावार्थ – ऐसे समत्व योग के परायण होकर कार्य करने को कहा गया है। अतः समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मों के बन्धन से मुक्त होने का साधन है।

- श्रीमद्भगवद्गीता 2.50

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः॥

अपने नैसर्गिक (कर्त्तव्यरूप) कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य परम् सिद्धि प्राप्त करता है। अतः हमें स्वार्थहीन भाव से कर्म करना चाहिए।

- श्रीमद्भगवद्गीता 17.45

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्मयोग कहा गया है।

2.2 ज्ञानयोग

जिस विशुद्ध ज्ञान के द्वारा हमारी बुद्धि से अज्ञानरुपी आवरण हट जाए एवं हमें आत्मज्ञान की प्राप्ति हो, वही ज्ञानयोग कहलाता है। ज्ञानयोग को समझने से पूर्व आइए विद्या (ज्ञान) एवं अविद्या (अज्ञान) के विषय को जानें।

पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार -

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ - योगसूत्र 2.5

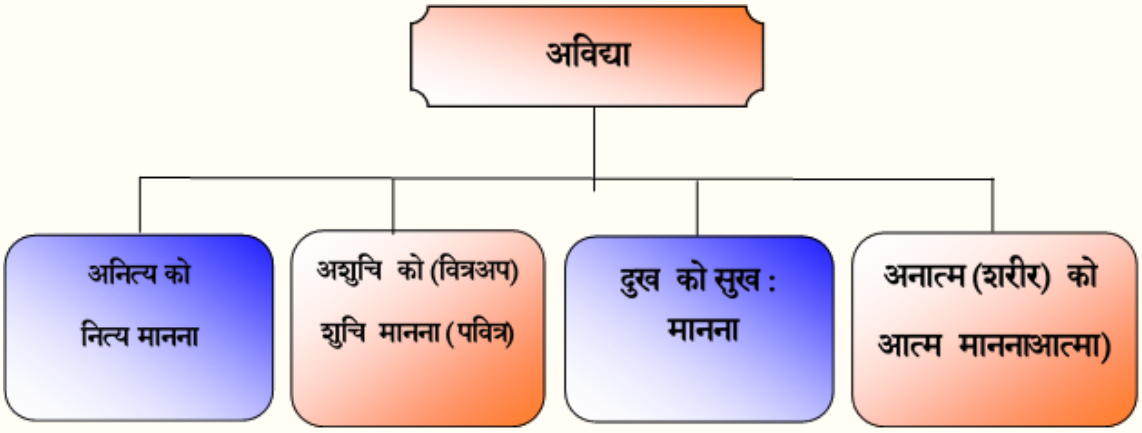

यह अविद्यारूपी अज्ञान है, जो मनुष्य के पतन का कारण है।

अतः अविद्यारूपी अज्ञान का आवरण हट जाने पर हम ज्ञान को प्राप्त कर सकते है। इसी प्रकार भगवदगीता के अनुसार भी कहा गया है-

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

जिस प्रकार धुएँ से अग्नि तथा मलिनता से दर्पण ढँक जाता है एवं जिस प्रकार उल्ब (जेर) से गर्भ आवृत्त रहता है, उसी प्रकार कामरूपी अज्ञान के द्वारा ज्ञान आवृत्त रहता है ।

- श्रीमद्भगवद्गीता 3.38

इस अज्ञान रूपी आवरण को हटाने एवं ज्ञान की प्राप्ति के लिए ईशावास्योपनिषत् में प्रार्थना की गयी है कि -

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ ई. 15॥

अर्थात् - सत्य रूपी ईश्वर का मुख हिरण्यमय पात्र रूपी आवरण अर्थात् अविद्या से ढँका हुआ है। अतः हे ईश्वर ! सत्यधर्म (विद्या) का अनुष्ठान करने वाले मुझ साधक के लिए वह अविद्यारूपी आवरण हटा लीजियें ।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥केनोपनिषत् ॥1.2

अर्थात् - जो मन का मन, प्राण का प्राण, वाणी का वाक्, श्रोत्र इन्द्रिय (कानों) का कान, नेत्रों का नेत्र है, वह परमात्मा है। ज्ञानीजन उन परमात्मा को जानकर अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं।

- **ज्ञान की श्रेष्ठता का वर्णन -**

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥

भावार्थ – परम् पापी मनुष्य भी यदि ज्ञानरूपी नौका का आश्रय लेता है, तो वह भी कल्याण को प्राप्त होता है। *श्रीमद्भगवद्गीता 4.36*

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

अर्थात् - इस संसार में ज्ञानके सदृश पवित्र करनेवाला निःसंदेह अन्य कोई भी साधन नहीं है।

- *श्रीमद्भगवद्गीता 4.38*

अतः स्पष्ट है कि वस्तु के विशुद्ध एवं यथार्थ ज्ञान प्राप्त न होकर विपरीत ज्ञान प्राप्त होना ही अज्ञान है । वेद, उपनिषत् एवं शास्त्रों के श्रवण, मनन एवं स्वाध्याय के द्वारा अविद्या के आवरण का नष्ट होना तथा विशुद्ध, सनातन ज्ञान की प्राप्ति होना ही ज्ञानयोग कहलाता है।

2 3.भक्तियोग -

भक्तियोग से तात्पर्य है- स्वयं के अहङ्कार को पूर्णतया त्यागकर मन, वचन एवं कर्मों के द्वारा स्वयं को पूर्णरूप से ईश्वर के लिए समर्पित कर देना। भक्तियोग उपर्युक्त उल्लिखित कर्मयोग एवं ज्ञानयोग की प्राप्ति के साधनरूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ज्ञानयोग में ज्ञानप्राप्ति एवं कर्मयोग में निष्कामभाव की प्राप्ति केवल भक्ति तथा ईश्वर के प्रति समर्पण के द्वारा ही सिद्ध हो सकती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय को 'भक्तियोग' के नाम से जाना जाता है, जिसके अनुसार-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि जो लोग मुझे में मन को एकाग्र करके नित्य मेरी उपासना करते हैं तथा अनन्य श्रद्धाभाव से मेरी आराधना (भक्ति) करते हैं, वे मुझे शीघ्रता से प्राप्त करते हैं।

- *श्रीमद्भगवद्गीता 12.2*

स्पष्ट है कि **ईश्वर प्रणिधान** (मन, वचन, कर्म के द्वारा सम्पूर्णरूप से ईश्वर के प्रति समर्पित होना) की पूर्ण साधना कर ईश्वर की शरण को प्राप्त होना ही भक्तियोग है।

शास्त्रों में भक्ति के 9 प्रकार बताए गए हैं, जिसे नवधा भक्ति के रूप में जाना जाता हैं -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ (श्रीमद् भागवतम् 7.5.23-24)

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवनम्, अर्चन, वन्दन, दास्य एवं सख्य – ये भक्ति के नौ प्रकार कहे गए हैं।

इसके अतिरिक्त तुलसीदास कृत श्रीराचरितमानस (अरण्य काण्ड) के अन्तर्गत श्रीराम द्वारा देवी शबरी को नवधा भक्ति के विषय में उपदेश किया गया है, जो निम्न प्रकार है –

नवधा भकति कहउँ तोहि पाहीं।

सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।

दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुर पद पकंज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥ (चौपाई - दोहा 35)

मन्त्र जाप मम दृढ बिस्वासा।

पञ्चम भजन सो बेद प्रकासा॥

छठ दम सील बिरति बहु करमा।

निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।

मोतें संत अधिक करि लेखा॥

आठवँ जथालाभ संतोषा।

सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥

नवम सरल सब सन छलहीना।

मम भरोस हियँ हरष न दीना॥ (1-5 चौपाई दोहा 36)

2.4 अष्टाङ्ग योग (राजयोग) :-

महर्षि पतञ्जलि कृत योगसूत्र के अन्तर्गत निहित द्वितीय पाद (साधनपाद) में अष्टाङ्ग योग का प्रतिपादन किया गया है। इसे राजयोग के नाम से भी जाना जाता है, जिसकी साधना से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आदि सभी पक्षों का विकास एवं परिष्कार होता है। अष्टाङ्ग योग के आचरण से मानवीय जीवन का क्रमबद्ध विकास सहज रूप से हो सकता है। यह एक सम्यक् जीवनशैली तथा आचरण का विज्ञान है। स्वयं के उत्थान हेतु प्रयत्नशील प्रत्येक मनुष्य को अष्टाङ्ग योग का पालन करना चाहिए।

योग के अङ्ग -

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ योगसूत्र 2.29 ॥

यम, नियम, आसान, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि - यह योग के आठ अङ्ग कहे गए हैं। इन अङ्गों में भी दो पक्ष निहित हैं- बहिरङ्ग पक्ष एवं अन्तरङ्ग पक्ष। उपरोक्त अङ्गों के अन्तर्गत प्रथम पाँच अङ्ग (यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार) योग के बहिरङ्ग पक्ष तथा शेष तीन अङ्ग (धारणा, ध्यान समाधि) योग के अन्तरङ्ग पक्ष हैं। बहिरङ्ग से तात्पर्य उन अङ्गों से है, जो मनुष्य के बाह्य व्यक्तित्व, व्यवहार, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक पक्ष आदि से सम्बन्धित है। वही अन्तरङ्ग से तात्पर्य उन अङ्गों से हैं, जो मनुष्य की आन्तरिक चेतना एवं आध्यात्मिक पक्ष से सम्बन्धित है। योगाभ्यासों के माध्यम से सभी अङ्गों के मध्य आन्तरिक सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है, जिससे चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर आत्मस्वरूप की अनुभूति हो।

1. **यम** - यम अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग है। यम शब्द 'यम उपरमे' धातु से बना है, जिसका अभिप्राय **'शान्त होना'** अर्थात् सभी बाह्य-विषयों तथा अशुभ प्रवृत्तियों से हटकर आत्मकेन्द्रित होना है। यह सदाचरण के व्यापक सिद्धान्तों पर आधारित सनातन अवधारणा हैं, जिनके पालन से मनुष्य सामाजिक मूल्यों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग तथा क्रियाशील बनता है।

   अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योगसूत्र 2.30 ॥

   अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवम् अपरिग्रह - यम के पाँच अङ्ग होते हैं।

   - **अहिंसा** - मन, वाणी अथवा कर्म के द्वारा किसी भी प्राणी को दुःख अथवा आघात नहीं पहुँचाना अहिंसा कहा गया है।
   - **सत्य** - मन एवं इन्द्रियों के द्वारा किसी विषय को जैसा देखा, सुना एवं चिन्तन किया हो, उसे उसी प्रकार शुद्ध रूप में मन, वाणी अथवा कर्म के माध्यम से प्रदर्शित करना सत्य कहा गया है। सत्य ही धर्म का मूल है।
   - **अस्तेय** - किसी अन्य व्यक्ति के स्वामित्व अथवा अधिकार का स्वार्थपूर्वक हरण करना स्तेय कहा गया है। ऐसा न कर स्वयं के पराक्रम द्वारा अधिकार एवं स्वामित्व का अर्जन करना अस्तेय कहलाता है। अतः अस्तेय का व्यापक अर्थ है - मन, वचन तथा कर्म से किसी दूसरे की सम्पत्ति को चुराने की चेष्टा न करना।

- **ब्रह्मचर्य** - मन एवं इन्द्रियों को अनावश्यक विषयों में न लगाकर सदा आत्मसंयमित रहना तथा अपने मानसिक एवं शारीरिक सामर्थ्य को संरक्षित रखना ब्रहमचर्य कहा गया है।
- **अपरिग्रह** - आवश्यकता से अधिक धन एवं भोग्य पदार्थों के सञ्चय की वृत्ति का परित्याग करना अपरिग्रह कहलाता है।

2. **नियम** - योगदर्शन में वर्णित नियम, अष्टाङ्गयोग का द्वितीय अङ्ग कहा गया है। नियम का तात्पर्य अनुशासन अथवा संयम आदि से है। नियम के पालन से मनुष्य अपने जीवन में अनुशासित, सुव्यवस्थित एवं कर्त्तव्यपरायण बनता है, जो जीवनपथ को सरल तथा सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ योगसूत्र 2.32 ॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवम् ईश्वरप्रणिधान - यह नियम के पाँच अङ्ग हैं।

- **शौच** - शौच शब्द का तात्पर्य शुद्धता से है। सामान्यतः हम शुद्धता का भाव केवल शरीर की शुचिता से ही लेते हैं, परन्तु शौच के दो प्रकार कहे जा सकते हैं - **बाह्य शौच** एवं **आन्तरिक शौच**। बाह्य शौच- शरीर से सम्बन्धित पवित्रता एवं स्वच्छता है, वहीं आन्तरिक शौच का तात्पर्य मन एवं बुद्धि की शुचिता तथा निर्विकारिता से है।
- **सन्तोष** - उपलब्ध संसाधनों तथा स्वयं के पुरूषार्थ द्वारा प्राप्त फल में ही श्रद्धा एवं आनन्द का भाव रखना सन्तोष कहा गया है। सन्तोष को सर्वश्रेष्ठ धन माना गया है।
- **तप** - द्वन्दों एवं विपरीत परिस्थितियों में सहनशीलता रखकर अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहना तप कहा जाता है।
- **स्वाध्याय** - वेदादि शास्त्रों का अध्ययन एवं ॐकार का नित्य जप करते रहना स्वाध्याय माना जाता है। इसी के अतिरिक्त स्वयं के प्रति आत्मविश्लेषण से सम्बन्धित अवधारणा भी स्वाध्याय के अन्तर्गत निहित कही जा सकती है।
- **ईश्वर-प्रणिधान** - समस्त कर्मों को अनासक्त भाव से करते हुए उन्हें ईश्वर के प्रति समर्पित करना ईश्वर-प्रणिधान है।

3. **आसन-** अष्टाङ्गयोग का तृतीय अङ्ग आसान कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि आसन के अभ्यास से पूर्व उक्त यम एवं नियम का पालन करना पूर्णरूप से अनिवार्य बताया गया है। तभी मनुष्य समुचित रूप से आसन और अन्य योगाङ्गों का पालन करने हेतु पात्र बन पाता है।

स्थिरसुखमासनम् ॥ योगसूत्र 2.46 ॥

भावार्थ- बिना किसी व्याधि, व्यवधान एवम् असहजता के सुखपूर्वक लम्बे समय तक स्थिर रहकर योग-साधना में प्रवृत्त रहना ही आसन कहा गया है।

यहाँ हठयोग सम्बन्धित आसनों की भाँति शरीर को विभिन्न आकृतियों में लाकर योगासनों का अभ्यास करना नहीं बताया गया हैं। वस्तुतः बैठकर या किसी भी शारीरिक-मुद्रा में द्वन्द्वरहितभाव से सुखपूर्वक तथा स्थिर रहकर निरन्तर योग-साधना में लीन रहना ही योगसूत्र में वर्णित आसन की परिभाषा का यथार्थभाव है।

4. **प्राणायाम** - यह अष्टाङ्ग योग का चतुर्थ अङ्ग है। पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार -

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ योगसूत्र 2.49॥

आसन की सिद्धि के पश्चात् श्वास-प्रश्वास की गति का निश्चल हो जाना प्राणायाम कहा गया है। उपर्युक्त परिभाषा योग साधना के दार्शनिक पक्ष हेतु उल्लिखित है। विद्यार्थियों के लिए उत्तम स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से प्राणायाम का व्यावहारिक पक्ष भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः प्राणयाम के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित अवधारणा का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

सामान्यतः प्राणायाम श्वासों का सम्यक् व्यायाम है। इसमें श्वसन क्रिया का नियमन अथवा निग्रह किया जाता है। प्राणायाम दो शब्दों की सन्धि से बना है - पहला प्राण और दूसरा आयाम। प्राण का अर्थ जीव-चेतना, श्वास-प्रश्वास अथवा प्राण वायु से है और आयाम का अर्थ नियन्त्रित करना, विस्तृत करना और व्यापक बनाना है। इस प्रकार प्राणायाम से तात्पर्य श्वासोच्छ्वास को नियन्त्रित, नियमित एवं व्यापक बनाना है।

टिप्पणी -

- **श्वास** - प्राणवायु का नासिका द्वारा शरीर के भीतर प्रवेश करना श्वास कहा जाता है।
- **प्रश्वास-** शरीरस्थ वायु (श्वास द्वारा ली गई) का नासिका-छिद्रों द्वारा पुनः बाहर की ओर निकलना प्रश्वास कहा जाता है।

- **कुम्भक** - श्वास लेने अथवा छोड़ने के मध्य अन्तराल को कुम्भक अथवा स्तम्भवृत्ति कहते हैं।

5. **प्रत्याहार** - अष्टाङ्गयोग में प्रत्याहार का पञ्चम स्थान है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ योगसूत्र 2.54॥

इन्द्रियों का स्वयं के विषयों से सम्बन्ध न रहने पर उनका चित्त के स्वरूप में ही लीन हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

उक्त प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर, मनुष्य का मन एवम् इन्द्रियाँ निर्मल तथा सात्त्विक हो जाती हैं। मनुष्य में सभी इन्द्रियों तथा मन को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाने का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है, अर्थात् वह सभी इन्द्रियों का नियन्त्रण करने में योग्य हो जाता है। इसे ही प्रत्याहार कहा गया है।

6. **धारणा** - यह अष्टाङ्ग योग का षष्ठ अङ्ग है। पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार -

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ योगसूत्र 3.1॥

प्रत्याहार के द्वारा वश में किये हुये चित्त को शरीर के किसी एक स्थान अथवा केन्द्र (स्थूल या सूक्ष्म, बाह्य या आन्तरिक) में स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। धारणा के अभ्यास से चित्त की वृत्तियाँ स्थिर एवं नियन्त्रित हो जाती हैं। ध्यानाभ्यास का मूल आधार धारणा है।

7. **ध्यान** - अष्टाङ्ग-योग में ध्यान का स्थान सप्तम है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥ योगसूत्र 3.2॥

धारणा के द्वारा मन को जिस ध्येय पदार्थ अथवा बिन्दु पर लगाया गया है, केवल उसी ध्येय वृत्ति का निरन्तर बने रहना एवम् अन्य किसी विषय अथवा वृत्तियों का उदय न होना, ध्यान कहा गया है।

8. **समाधि** - समाधि अष्टाङ्ग योग का अष्टम अङ्ग है। पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार-

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।। योगसूत्र 3.3।।

जिस अवस्था में ध्याता (ध्यानकर्ता) को स्वयं के अस्तित्व का अनुभव न रहे एवं ध्यान-वृत्ति भी ध्येय में लीन हो जाए अर्थात् ध्याता और ध्यान जब ध्येय में आत्मसात् हो जाये, तब उस एकरस अवस्था को 'समाधि' कहा जाता है।

2.5 मन्त्र योग-

मन्त्रयोग से अभिप्राय 'मन्त्र' के जप, मनन, चिन्तन के द्वारा समाधि अथवा योग की अवस्था में स्थित होने से है। निरुक्त के अनुसार 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' अर्थात् -जिसके मनन, ध्यान एवं जप आदि अनुष्ठानों द्वारा हमारी रक्षा अथवा कल्याण हो, वहीं मन्त्र है।

मन्त्र के अन्तर्गत ध्वनिस्पन्दन, बीजाक्षर आदि हो सकते है, जिसके उच्चारण अथवा साधना से चित्त शान्त होता है।

मन्त्रजपान्मनालयो मन्त्रयोगः॥

मन के जप के द्वारा मन) चित्त (का लय हो जाना ही मन्त्रयोग है।

पतञ्जलि योगसूत्र में प्रणव) ॐकार (के जप द्वारा प्राप्त फल के विषय में उल्लेख करते हुए कहा गया है कि -

तत् प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च॥ *- योग सूत्र 1.29*

अर्थात् -उक्त ऊँकार के मनन, जप आदि करने पर अन्तराय) विघ्नों (का स्वतः ही नाश हो जाता है एवं आत्मस्वरूप का ज्ञान अर्थात् कैवल्यावस्था की प्राप्ति होती है।

2.6 हठयोग -

हठयोग के अभ्यास द्वारा मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है। प्रायः हठयोग से तात्पर्य 'हठपूर्वक' किये जाने वाली क्रियाओं से माना जाता है। परन्तु वास्तविकता में यह तथ्य युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता। सिद्धसिद्धान्तपद्धति के अनुसार-

हकार कीर्तितः सूर्यश्च ठकारश्चन्द्र उच्यते।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 1.96)

अर्थात् - हठ शब्द ' ह ' और ' ठ ' इन दो अक्षरों से मिलकर बना है । इनमें 'ह-कार' का अर्थ सूर्य स्वर या पिंगला नाड़ी है तथा ' ठ-कार ' का अर्थ चन्द्र स्वर या इड़ा नाड़ी से लिया गया है । इन सूर्य और

चन्द्र स्वरों के एकात्म को ही हठयोग कहा गया है। सूर्य और चन्द्र के संयोग से प्राण सुषुम्ना में चलने लगता है, जिससे मूलाधार में सुषुप्त अवस्था वाली कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर ऊर्ध्वगामी होती है तथा षड्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर ब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त होती है । यही आत्म और परमात्म तत्त्व का मिलन हैं, जिससे साधक का अज्ञान नष्ट होकर ज्ञान का उदय होता है। दु : खों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है एवं राजयोग की सिद्धि अर्थात् आत्मस्वरूप की अनुभूति होती है। यही हठयोग का वास्तविक अर्थ है।

हठयोग में वर्णित षड्कर्म, आसान, प्राणायाम,मुद्रा, बन्ध आदि अभ्यासों का उद्देश्य केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए कहा गया है। हठयोगप्रदीपिका के अनुसार -

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते। (हठयोगप्रदीपिका 1.2)

अर्थात् - केवल राजयोग अर्थात् समाधि की अवस्था प्राप्त करने की उद्देश्य से ही हठयोग विद्या का उपदेश किया जा रहा है।

प्रश्नावली

प्रश्न 1) निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प का चयन करें -

1) निष्कामकर्म की अवधारणा, में योग की किस शारवा से सम्बन्धित है -

अ) भक्तियोग ब) ज्ञानयोग

स) कर्मयोग द) हठयोग

2) 'योगः कर्मसु कौशलम्' किस महान् ग्रन्थ में उल्लिखित है -

अ) भगवद्गीता ब) योगवाशिष्ठ

स) रामायण द) हठयोगप्रदीपिका

3) ईश्वर प्रणिधान योग की किस शाखा से सब जुड़ा है-

अ) राजयोग ब) भक्तियोग

स) मन्त्रयोग द) कर्मयोग

4) राजयोग के अन्तर्गत कितने योगाङ्ग निहित है -

अ) 7 ब) 8

स) 9 द) 10

5) हठयोग के अन्तर्गत 'ह'कार से क्या तात्पर्य बताया गया है-

अ) चन्द्र ब) सूर्य

स) पृथ्वी द) वायु

प्रश्न 2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1) रामचरितमानस में भक्ति के ..... प्रकार कहे हए है। (8/9)

2) ईश्वरप्राणिधान की अवधारणा ..... से सम्बन्धित है । (कर्मयोग / भक्तियोग)

3) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा ..... कदाचन । (कर्मसु / फलेषु)

4) योगसूत्र के अनुसार ..... अष्टाङ्ग योग का तृतीय अङ्ग है। (आसन/प्राणायाम)

5) योग शरीर एवं मन का ..... है । (सामञ्जस्य / वियोग)

प्रश्न 3) सही जोड़ियाँ मिलाइए –

1)	ज्ञानयोग	अ) चन्द्र स्वर
2)	'ठ'कार	ब) मन का रक्षण करने वाला
3)	कर्मयोगी	स) अविद्या का नाश
4)	मन्त्र	द) भक्तियोग
5)	ईश्वरप्रणिधान	ई) निष्कामकर्म

प्रश्न 4) निम्नलिखित वाक्यों से सत्य/असत्य का चयन कीजिए -

1) अष्टाङ्ग योग में वार्णित योगाङ्ग 'नियम' के अन्तर्गत सात अङ्ग कहे गए है। (सत्य/असत्य)

2) हठयोग का मूल उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति कहा गया है। (सत्य/असत्य)

3) योगसूत्र के अनुसार धारणा में निरन्तर स्थिर रहना ध्यान कहा गया है। (सत्य/असत्य)

4) ज्ञानयोग का मुख्य उद्देश्य अविद्या का आवरण हटाकर आत्मानुभूति कराना है। (सत्य/असत्य)

5) ओंकार के जप एवं चिन्तन से योगसाधना में आने वाले विघ्नों का नाश नहीं होता है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 5) अतिलघुत्तरीय प्रश्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1) क्रियायोग की परिभाषा योगसूत्र के अनुसार लिखिए ।

2) यम तथा नियम के अङ्गों को लिखिए ।

3) अष्टाङ्ग योग में आसन हेतु प्रयुक्त सूत्र को लिखिए ।

4) योग की विभिन्न शाखाओं के नाम लिखिए ।

5) मन्त्रयोग से क्या तात्पर्य है?

प्रश्न 6) लघुत्तरीय प्रश्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) नवधा भक्ति के सभी प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

2) अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत योगाङ्ग 'यम' को समझाते हुए यम के सभी अंगों की व्याख्या कीजिए।

3) भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग से सम्बन्धित कोई तीन श्लोक व्यख्या सहित लिखिए?

4) हठयोग से आप क्या समझते है? सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

5) अष्टाङ्ग योग में वर्णित ध्यान एवं समाधि के सूत्र सहित व्याख्या को लिखिए ।

प्रश्न 7) दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) योगसूत्र में वर्णित अष्टाङ्ग योग का व्याख्यात्मक रूप से वर्णन कीजिए।

2) कर्मयोग को विस्तृत वर्णन करें।

3) भक्तियोग एवं नवधा भक्ति को समझाईए।

4) मन्त्रयोग का विस्तृत विवरण कीजिए।

5) ज्ञानयोग की अवधारणा का वर्णन करें।

परियोजना कार्य

- श्रीमद्भगवद्गीता में निहित ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग से सम्बन्धित विषयों का चिन्तन करें ।
- योग की विभिन्न शाखाओं का चार्ट तैयार करें।

इकाई - तृतीय

योग एवं स्वास्थ्य रक्षण

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

3.1 स्वास्थ्य की परिभाषा एवं लक्षण

3.2 विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य

3.3 स्वास्थ्य के सन्दर्भ में योग का महत्त्व

3.4 हठयोग-सिद्धि के लक्षण

3.5 सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा में योग शिक्षा का महत्व

3.6 सर्वांगीण विकास के संदर्भ में अष्टाङ्ग योग शिक्षा की का महत्त्व

3.1 स्वास्थ्य की परिभाषा एवं लक्षण

स्वस्थ रहना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वस्थ रहकर ही मनुष्य अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सकता है। संसार में मनुष्य के पास अनेकों भौतिक सुख-सम्पदा हो, परन्तु यदि स्वास्थ्य न हो, तो वे सारे ऐश्वर्य एवं सुख होना निरर्थक है। वह किसी भी सुख को प्रसन्नतापूर्वक नहीं भोग सकता। इसलिए कहा भी गया है कि -

"पहला सुख, निरोगी काया"

क्योंकि यदि स्वास्थ्य ही नहीं होगा तो दूसरे किसी भी सुखों का कोई अर्थ नहीं। परन्तु यह भ्रान्ति है कि शरीर का निरोगी होना ही पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति है। आयुर्वेद के ग्रन्थ सुश्रुतसंहिता के अनुसार-

स्वस्थ की परिभाषा -

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

- सुश्रुतसंहिता 15.41

यहाँ 'सम' का अर्थ 'सन्तुलित' अथवा 'समान' होना है। जिस व्यक्ति के शरीर में दोष (वात, कफ, पित्त) समान हों, अग्नि (देहाग्नि एवं जठराग्नि) सम्यक् हो, सात धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र), मल (स्वेद, केश, लोम आदि) समुचित हों तथा सभी शारीरिक क्रियाएँ सम अर्थात् सन्तुलित एवं सुचारु हों। इसीके साथ जिसकी आत्मा, दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ) तथा मन प्रसन्न, निर्विकार निर्मल एवम् आनन्दित-अवस्था में हो, वही 'स्वस्थ' कहलाता है।

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ॥

(सुश्रुतसंहिता - 15.3)

अर्थात् - दोष, धातु एवं मल के समन्वय से ही शरीर बना है। इनके सम रहने से ही शरीर स्वस्थ रहता है एवम् इनके विषम होने से ही शरीर में रोग उत्पन्न होता है। अतः कहा भी गया है कि -

रोगस्तु धातुवैषम्यं, धातुसाम्यमरोगता॥ (अष्टाङ्ग हृदय सूत्र 1.20)

3.2 विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य -

स्वास्थ्य का अर्थ केवल शरीर में रोगों एवं व्याधियों का अनुपस्थित होना ही नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक चारों स्तरों में विकारहीनता तथा आनन्दमय स्थिति से है।

अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ के चार घटक हैं - शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक; अर्थात् आत्मिक ज्ञान एवम् आनन्द की सम्पन्नता। इनमें से किसी एक भी पक्ष की अनुपस्थिति होने पर सम्पूर्ण स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता। स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है -

शारीरिक स्वास्थ्य के लक्षण -

- सन्तुलित एवं सुचारु शारीरिक क्रियाएँ हों।
- नाड़ी-स्पन्दन, रक्तदाब, शरीर का भार, सहनशीलता आदि व्यक्ति के आकार, आयु, लिङ्ग के सामान्य मानकों के अनुसार हों।
- सभी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ स्वस्थ हो।

- श्वास-प्रश्वास सामान्य तथा नींद अच्छी आती हो।
- मेरुदण्ड निर्विकार एवं स्वस्थ हो।

मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण -

- अन्तर्मन में कोई द्वन्द्व अथवा भावनात्मक सङ्घर्ष न हो।
- मन की सन्तुलित-अवस्था।
- परिस्थितियों के साथ सङ्घर्ष करने की सहनशक्ति वाला हो।
- आत्म-संयमित एवं समायोजन करने वाली बुद्धि वाला होना।

सामाजिक-स्वास्थ्य के लक्षण -

- यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) का साधक हो।
- भय एवं भ्रमयुक्त समाज की स्थापना में कार्यरत हो।
- पर्यावरण-प्रेमी हो तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः०', 'वसुधैव कुटुम्बकम्०' जैसी परोपकारी भावनाएँ रखता हो।
- समाज को स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, संस्कृति आदि में योगदान देता है।

आत्मिक स्वास्थ्य के लक्षण -

- ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग का साधक हो तथा नित्य स्वाध्याय, वेदपाठ, योगाभ्यास करता हो।
- पुण्य-कर्मों के द्वारा आत्मिक उत्थान वाला हो।
- तन-मन-धन से ईश्वरप्रणिधान का पालन करता हो।
- परोपकार एवं लोककल्याण की भावना वाला हो।

कश्यपसंहिता के अनुसार आरोग्य के लक्षण -

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च ।

सृष्टविण्मूत्रवातत्वम् शरीरस्य च लाघवम् ॥

सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम् ।

बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता ॥

विद्यात् आरोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम् ।

श्लोकांश	भावार्थ
अन्नाभिलाषः	भोजन करने की इच्छा अर्थात् भूख समय पर लगती हो।
सुखेन भुक्तस्य परिपाकः	भोजन समुचित प्रकार से पचता हो।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वम्	मल-मूत्र एवं वायु का निष्कासन उचित प्रकार से होता हो।
शरीरस्य च लाघवम्	शरीर में स्फूर्ति एवं लाघव (हल्कापन) रहता हो।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वम्	इन्द्रियाँ एवं मन सदा प्रसन्न अवस्था में रहते हों।
सुखस्वप्नप्रबोधनम्	सुखपूर्वक निद्रा एवं ब्रह्ममुहूर्त में सुखपूर्वक जागरण ।
बलवर्णायुषां लाभः	बल, वर्ण एवम् आयुष्य की प्राप्ति होती हो।
सौमनस्यम्	सदाचार से युक्त होना।
समाग्निता	पाचक अग्नि का सन्तुलन।

विद्यात् आरोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम् ०, अर्थात् उक्त लक्षणों से युक्त मनुष्य को निरोगी बताया गया है, वहीं इसके विपरीत, उक्त लक्षणों की अनुपस्थिति होने पर मनुष्य को रोगी कहा गया है।

– कश्यपसंहिता, खिलस्थान, पञ्चमोध्यायः

3.3 स्वास्थ्य के सन्दर्भ में योग का महत्त्व -

स्वास्थ्य मानव जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। परन्तु केवल शारीरिक-रूप से निरोगी होना ही पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा के अन्तर्गत नहीं आता वरन् शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक सभी स्तरों पर अविकारी एवं स्वस्थ होना ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में भी योग की प्रासङ्गिकता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योग जीवन जीने की कला एवं साथ ही पूर्ण विज्ञान पर आधारित चिकित्सा- पद्धति है। योगदर्शन एवम् उसमें वर्णित योगाभ्यास न केवल शारीरिक स्तर पर स्वास्थ्य प्रदान करते हैं, बल्कि मानसिक, सामाजिक, आत्मिक स्तर पर भी अत्यन्त लाभदायक है।

'स्वस्थ' शब्द का सन्धिविच्छेद करें तो हम पायेंगे कि -

स्व + स्थ = स्वस्थ

अर्थात्- जो मनुष्य स्व (स्वयं) में स्थित (स्थ) है, वही 'स्वस्थ' कहा गया है। अतः स्वास्थ्य के चारों घटकों में स्वयं का स्थित होना स्वास्थ्य की उचित परिभाषा है, इसी स्वास्थ्य की स्थिति को प्राप्त करने में योग महती भूमिका निभाता है क्योंकि योगसिद्धि के फल का वर्णन करते हुए महर्षिपतञ्जलि कहते हैं कि-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्

योग-अवस्था के प्राप्त होने के पश्चात् दृष्टा (आत्मा) अपने स्वरूप अर्थात् स्वयं में स्थित हो जाता है। अतः सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

- योगसूत्र 1.3

अष्टाङ्गयोग की साधना के अन्तर्गत सवप्रर्थम **'यम'** (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) के पालन का विधान है। 'यम' अर्थात् योग के प्रथम अङ्ग के पालन से मनुष्य सम्यक् सामाजिक आचरण को आत्मसात् करता है अर्थात् वह अपने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों तथा कर्त्तव्यों से परिचित होता है। वहीं **नियम** (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) द्वारा स्वयं के जीवन में अनुशासित बनता है।

आसनों के अभ्यास के माध्यम से मनुष्य शारीरिक-निरोगता तथा द्वन्द्वों में समान रहना सीखता है **(ततो द्वन्द्वानभिघातः** 2.48)। **प्राणायाम** का अभ्यास करके साधक की बौद्धिक क्षमताएँ बलवती होती हैं एवं वह मानसिक-रूप से प्रज्ञावान् बनता है।

प्रत्याहार के पालन के द्वारा मनुष्य स्वयं के मन एवम् इन्द्रियों पर विजयी होता है, वहीं **धारणा** के माध्यम से जीवन के उद्देश्य अथवा लक्ष्य के प्रति एकाग्रता को प्राप्त करता है। अन्ततः **ध्यान** एवं **समाधि** का साधक होकर मानव-चेतना के उच्चतम स्तरों को प्राप्त करके योग के अन्तिम ध्येय अर्थात् आत्मज्ञान/आत्मबोध/कैवल्य की स्थिति को प्राप्त करता है। इस प्रकार योग एवम् उसमें वर्णित अभ्यास पूर्ण स्वास्थ्य-प्राप्ति के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3.4 हठयोग-सिद्धि के लक्षण

उक्त हठयोगाभ्यास, षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध के सिद्ध हो जाने पर हठयोग सिद्धि के निम्न लक्षण बताए हैं –

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।

अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम्॥

शरीर में लाघव (हलकापन), मुख पर प्रसन्नता, स्वरों में सौष्ठव, नेत्रों में निर्मलता (तेजस्विता), नीरोग्यता, बिन्दु (आज्ञाचक्र से स्रावित होने वाला स्राव) पर नियन्त्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों में विकारहीनता (विशुद्धता), यह सभी हठसिद्धि के लक्षण हैं। – हठयोगप्रदीपिका – 2.78

वहीं योगदर्शन में योगसिद्धि (राजयोग) का फल द्रष्टा (आत्मा) का स्वयं में स्थित होना बताया गया है। (**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** - योगसूत्रम् 1.3)

3.5 सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा में योग शिक्षा का महत्व –

सम्पूर्ण स्वास्थ्य से तात्पर्य-

स्वास्थ्य मनुष्य के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, जिसके बिना व्यक्ति किसी भी प्रकार के सुख एवं सुविधाओं का आनन्दपूर्वक भोग नहीं कर सकता। अतः कहा भी जाता है -'पहला सुख निरोगी काया'। आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता में स्वास्थ्य की परिभाषा का वर्णन करते हुए कहा है कि-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलः क्रियाः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ - सुश्रुत संहिता 15.4.1

जिस व्यक्ति के शरीर मे त्रिदोष (वात, कफ, पित्त) की स्थिति सन्तुलित हो, देहाग्नि तथा जठराग्नि समान हो, सभी धातुएँ (रस, रक्त, माँस, भेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) सम्यक् अवस्था में हो, मल (स्वेद, केश, लोम आदि) समुचित हो तथा सभी शारीरिक क्रियाएँ सुचारू हों। इसी के साथ मन, इन्द्रियाँ तथा आत्मा प्रसन्न, निर्विकार एवं आनन्दित अवस्था में हो ऐसा व्यक्ति स्वस्थ कहा गया है।

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट है कि केवल शारीरिक रूप से रोग रहित होना ही पूर्ण निरोगी नहीं होता, वरन् मन, आत्मा एवं इन्द्रियों की प्रसन्नचित अवस्था होने पर ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति सम्भव है। इसी तथ्य को इंगित करते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया –

स्वास्थ्य से तात्पर्य केवल शरीर में रोगों की अनुपस्थिति से ही नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से आनन्दित निर्विकारता एवं निश्चलता से है।

- विश्व स्वास्थ्य संगठन

स्वास्थ्य की कामना करते हुए वेदों में भी इस प्रकार कहा गया है कि -

आयुधीन कल्पतां प्राणो न कल्प पर्योन कल्पतोत्रं पोन कल्पताम् पृष्ठ यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।

उक्त मन्त्र में आरोग्य एवं दीर्घायु रहते हुए मनुष्य को लोकहित (यज्ञ) कर्म में प्रवृत्त रहने की बात कही है एवं कल्पों तक उसके पञ्चप्राण, नेत्र एवं श्रोत्र (कान) आदि के बलयुक्त एवं स्वस्थ रहने की कामना की है।

जीवेम शरदः शतम् *-अथर्ववेद 19.67.2*

हम सौ शरदों (वर्षों) तक जीवित रहे आदि मन्त्र वेदों में सम्पूर्ण स्वास्थ्य, दीर्घायु की कामना एवं अवधारणा के उदाहरण हैं। स्वास्थ्य की इन्ही अवधारणाओं को सिद्ध करने में योगाभ्यासों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के सन्दर्भ में योग शिक्षा का महत्व –

स्वस्थ शब्द, दो शब्दों से मिलकर बना है। 'स्व' एवं 'स्थ' स्व का अर्थ है- स्वयं एवं 'स्थ' का तात्पर्य -स्थित होने से लिया जा सकता है। अतः 'स्वयं में स्थित' होना ही स्वस्थ शब्द का अभिप्राय कहा जा सकता है।

योगसूत्र में योग सिद्धि के फल का वर्णन करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि -

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानाम् ॥ -योगसूत्र 1.3

योग सिद्धि के पश्चात् आत्मा की स्वयं में अवस्थिति हो जाती है।

यह स्थिति मानवीय चेतना का सर्वांगीण विकास कहा जा सकता है। वहीं योगाभ्यास, जैसे- षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, ध्यान, मुद्रा आदि विषयों से सम्बन्धित हठयोग ग्रन्थ (हठयोगप्रदीपिका) में योग की क्रियाओं के सिद्ध हो जाने के परिणामों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि-

बपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ।

अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम् ॥

- हठयोगप्रदीपिका 2.78

शरीर में लाघव्य (हल्कापन), मुख पर प्रसन्नता का भाव, स्वरों में सौष्ठव, नेत्रों में निर्मलता (तेजस्विता), आरोग्यता, बिन्दु पर नियन्त्रण (वीर्यलाभ), जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों में विकारहीनता (विशुद्धता)- ये सब सिद्धि के लक्षण है।

यहाँ तक हम स्पष्ट रूप से समझ सकते है कि योग शिक्षा में उल्लेखित विभिन्न हठयोग से सम्बन्धित अभ्यासों के द्वारा हम शरीर एवं मन को स्वस्थ्य बना सकते है, जो शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य है। अतः शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत भी योग शिक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

3.6 सर्वांगीण विकास के संदर्भ में अष्टाङ्ग योग शिक्षा की का महत्त्व-

आधुनिक युग में मानव समाज असीम भौतिक सम्पदा एवं सुख-सुविधाओं से समृद्ध होते हुए भी घातक मानसिक तथा शारीरिक रोगों से ग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य द्वारा योग की व्यावहारिक (प्रायोगिक) प्रविधियों के साथ-साथ आध्यात्मिक चेतना के विकास हेतु साधना के रूप में आत्मसात

करने की महती आवश्यकता है। योग चिकित्सा स्वयं में एक पूर्णमानक वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित चिकित्सा पद्धति है। हजारो वर्षों से आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के उत्तम साधन के साथ-साथ वैज्ञानिक परिपेक्ष्य में भी योगविद्या अस्तित्वमान रही है, जिसे अनेक वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर पूर्णतः कल्याणकारी सिद्ध किया गया है। योगदर्शन में वर्णित अष्टाङ्ग योग भी वैज्ञानिक पक्ष पर आधारित सुव्यवस्थित विषय एवं सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का साधन कहा जा सकता है। यम एवं नियम- समुचित सामाजिक व्यवहार, आत्मसंयम तथा अनुशासन के लिए, आसान एवं प्राणायाम- शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए, प्रत्याहार तथा धारणा एकाग्रता वृद्धि, संकल्पशक्ति एवं लक्ष्य प्राप्ति में सहायता के लिए तथा ध्यान एवं समाधि- पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यम एवं नियम के सिद्धान्त वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। किसी भी योगाङ्ग का पालन करने पर मनुष्य की आन्तरिक ऊर्जा प्रकृति की नैसर्गिक ऊर्जा के सापेक्ष रहती है तथा उनके विरुद्ध कार्य करने पर प्रकृति की ऊर्जा के भी विरुद्ध हो जाती है। यही विरुद्ध कार्य व्यक्ति के भीतर रोगों की उत्पत्ति का कारण है, जिन्हें प्रज्ञापराध भी कहा जाता है तथा प्रकृति के साथ सामञ्जस्य रखने वाले सदाचरण से युक्त श्रेष्ठ कर्म सम्पूर्ण स्वास्थ्य एवं आरोग्य प्राप्ति के साधन है। यम एवं नियम का अनुपालन अतिआवश्यक माना गया है क्योंकि यह शरीर में सूक्ष्म परमाणु एवं कोशिकीय स्तर पर होने वाली रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। यम एवं नियम धर्म विज्ञान पर आधारित स्वास्थ्य के सिद्धान्त हैं, जो मनुष्य शरीर तथा मस्तिष्क संरचना एवं क्रियाविज्ञान को अत्यन्त सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। यम के माध्यम से व्यक्ति आत्मसंयमित होकर सामाजिक मूल्यों को सम्यक् रूप से आत्मसात् करने में समर्थ हो पाता है। यम में वर्णित सत्य का पालन करने से ही मनुष्य की आन्तरिक चेतना तथा आत्मविश्वास सकारात्मकता से परिपूर्ण हो जाते हैं। प्राचीन ऋषि मुनि भी पूर्ण सत्यनिष्ठा से इस अङ्ग की साधना करते थें । झूठ बोलने से व्यक्ति के भीतर जैवरासायनिक सन्तुलन बिगड़ जाते हैं तथा वह अनेक रोगों जैसे कब्ज, हृदय गति के विकार, विस्मृति आदि से पीड़ित हो जाता है। हिंसा, चोरी आदि करने पर शरीर में नकारात्मक हार्मोन्स का स्त्राव प्रारम्भ हो जाता है, जो तन्त्रिका तन्त्र एवं शरीर के प्रत्येक अणु, कोशिका तथा उत्तकों पर कुप्रभाव डालते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से छात्र सदैव विद्यार्जन हेतु सुपात्र बने रहते हैं तथा बल, तेज एवं ओज से परिपूर्ण होते हैं। वहीं इसके विरुद्ध कार्य करने पर अनेक दुःसाध्य रोगों के ग्रास बन सकते हैं। यम स्वयं में एक उच्चस्तरीय नैतिकशास्त्र है।

इसी प्रकार नियम भी सम्यक् जीवनशैली का विज्ञान है। हमारी सभ्यता में स्वच्छता का सदा ही पालन किया गया है। शौच में सम्मिलित षट्क्रिया एवं शास्त्रों के पठन द्वारा शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि इसके समुचित उदाहरण हैं। षट्कर्मों के अभ्यास से नेत्र, कण्ठकूप, श्वसन अङ्ग, उदर प्रदेश एवं आंतों की सफाई होती है, मोटापा, उदर एवं श्वसन रोग, बात एवं कफजन्य रोगों से निवृत्ति होती है। वर्तमान परिपेक्ष में शौच का अत्यन्त महत्त्व है। अनेक विषाणु तथा जीवाणु जनित रोगों में यह विशेष लाभदायी अङ्ग है। सन्तोष के पालन से अवसाद, कैंसर आदि जैसे भयावह रोगों की सम्भावना कम होती है। वहीं, तप के माध्यम से शारीरिक, सांवेगिक तथा मानसिक स्वास्थ्य लाभ होता है। स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान आत्मविश्लेषण तथा आध्यात्मिक प्रगति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार यम एवं नियम के समुचित पालन के पश्चात् मनुष्य योगासनों के अभ्यासों हेतु पात्र बन पाता है।

योग के अभ्यासों, जैसे- योगासन के अभ्यास से शरीर के सभी अङ्ग-प्रत्यंगों की समुचित मालिश होती है एवं रक्त परिसन्चरण बढ़ता है, जिससे शरीर में पुष्टता आती है। पाचन संस्थान, तन्त्रिका तन्त्र, स्नायु की कार्यप्रणाली, अन्तःस्रावी ग्रंथियों द्वारा हार्मोन का उत्सर्जन, मस्तिष्क आदि सभी सुव्यवस्थित सुचारू एवं संयोजित रूप से कार्य करते हैं, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति होती है। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार, आसनों के अभ्यास से जीवन की गुणवत्ता में अप्रत्याशित सुधार देखा गया है। विषाक्त पदार्थों का निष्कासन, चयापचय प्रणाली की क्रियाशीलता में वृद्धि, नसों एवं मांसपेशियों के बीच अद्भुत समन्वय, रोग प्रतिरोधक प्रणाली का बेहतर होना, हृदय तथा अन्य सभी अङ्गों का स्वास्थ्यलाभ एवम शारीरिक क्रियाओं का समुचित क्रियान्वयन आदि पक्ष योगासनों के माध्यम से सिद्ध होते हैं।

प्राणायाम के माध्यम से प्राणों का नियमन, विस्तार एवं नियन्त्रण प्राप्त होता है, जिससे प्राणिक एवं भावनात्मक संवेगों के मध्य सामन्जस्य उत्पन्न होता है। श्वसन तन्त्र एवं फेफड़ो की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। साथ ही शारीरिक एवं मानसिक पक्ष के मध्य सामञ्जस्य स्थापित होता है। वैज्ञानिक एवं शोधकर्ताओं ने यह पाया कि सामान्य व्यक्ति लगभग 500 मिलीलीटर ऑक्सीजन ग्रहण करता है, परन्तु अनुलोम विलोम, भस्त्रिका आदि प्राणायामों के निरंतर अभ्यास करने वाले साधकों को चार से छह लीटर ऑक्सीजन ग्रहण करते हुए पाया गया। प्राणायाम के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर में अथाह

जीवनशक्ति का प्रवाह होता है, जिससे शरीर के सभी अङ्ग एवं मन तथा इन्द्रियाँ सकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं, बेहतर ऑक्सीजन आपूर्ति एवं रक्त कणिकाओं में वृद्धि होती है, निद्रा सुव्यवस्थित होती है एवं शरीर तथा मन को अद्भुत विश्रांति प्राप्त होती है।

प्राणायाम, सम्पूर्ण नाडीशास्त्र पर आधारित चिकित्सा विज्ञान है। नाडीशोधन प्राणायाम के अभ्यास से शरीर की सभी नसों तथा नाड़ियों में व्याप्त विषाक्त पदार्थों का निष्कासन हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण नाडीमण्डल, परिसञ्चरण तन्त्र एवं तन्त्रिका तन्त्र के प्रवाह मार्ग में अवरुद्ध मलों का शमन हो जाता है तथा उक्त संस्थानों की कार्यप्रणाली सुव्यवस्थित एवं सुचारू होती हैं। प्राणायाम के अभ्यास से शरीर मे व्याप्त सांवेगिक एवं विद्युत प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में गमन करने लगता है, जिससे शरीर मे उपस्थित चक्रों में ऊर्जा का सञ्चरण प्रारम्भ होने लग जाता है, जो मनुष्य की चेतना को उच्च स्तर तक परिष्कृत करता है।

प्राणायाम का अभ्यास करते-करते मन और इन्द्रियों का शुद्धिकरण हो जाता है। तब इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों को सब ओर से समेटकर मन में विलीन करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा जाता है। मन की असंयमितता के परिणामस्वरूप उत्पन्न मानसिक क्लेश, अवसाद, क्रोध, विस्मृति आदि समस्याओं के निदानार्थ प्रयोग में लायी जाने वाली पाश्चात्य जगत प्रदत्त आधुनिक मनश्चिकित्सा की जो प्रविधियाँ प्रचलित हैं, उनमें मुख्यतः वैचारिक विश्लेषण, परामर्श तथा अन्य अन्तर्विक्षण प्रक्रियाओं के द्वारा रोग का इलाज किया जाता है। योगदर्शन एक सम्पूर्ण मनोविज्ञान है एवम प्रत्याहार का अभ्यास मन पर ही केन्द्रित है। आधुनिक मनश्चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली अनेक विधियाँ भी प्रत्याहार की विभिन्न क्रियाओं जैसे त्राटक, योगनिद्रा आदि का आधुनिकीकरण ही कही जा सकती हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास को विकसित करने में प्रत्याहार की अतिविशिष्ट भूमिका है। धारणा के अभ्यास से स्मरण शक्ति, संकल्पशक्ति एवं एकाग्रता में वृद्धि होती है एवं मनुष्य का आभा मण्डल / चुम्बकीय क्षेत्र विस्तृत, स्वस्थ एवं सकारात्मक होता है।

ध्यान एवं मुद्रा के अभ्यासों से मस्तिष्क में अद्भुत क्षमताओं का विकास होता है। ध्यान के दौरान मस्तिष्क का संरचनाओं में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं। इन्हीं परिवर्तनों के साथ अल्फा तरंगों की उत्पत्ति दृष्टिगोचर हुई, जो बौद्धिक विकास तथा स्मृति में वृद्धि एवं रचनात्मक तथा सृजनात्मक क्षमताओं

को भी विकसित करने में पूर्ण समर्थ है। ध्यान के अभ्यास से शरीर में नकारात्मक हार्मोन्स का स्तर कम पाया गया एवं वही सकारात्मक हार्मोन्स के स्तरों में वृद्धि देखी गई। योगनिद्रा का अभ्यास मस्तिष्क का भाग को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, जो तनाव प्रबन्धन (स्ट्रेस मैनेजमेंट) के रूप अत्यन्त सहायक है।

इस प्रकार योगाभ्यासों के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तो प्राप्त होता हैं, इसी के साथ आध्यात्मिक रूप से विकसित करने में भी योगाभ्यासों की महती भूमिका है। समाधि के माध्यम से व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता है। साथ ही समाज कल्याण हेतु परोपकारी एवं समाजोत्पादक कार्य करने की ओर प्रेरित होता है, 'वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को आत्मसात् करते हुए विश्व कल्याण में सहभागी बनता है। समाधि के द्वारा मनुष्य अपनी उच्चस्तरीय चेतना को प्राप्त कर ब्रह्माण्डीय चेतना से स्वयं का समन्वय कर लेता है। इस प्रकार योग के द्वारा मनुष्य अपने अन्तिम एवं प्रमुख ध्येय को प्राप्त करके पूर्ण स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

प्रश्नावली

प्रश्न 1) निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनें-

1) विश्व योग दिवस कब मनाया जाता है -

अ) 5जून ब) 22 जून

स) 21जून द) 18 जून

2) भारत में अन्तर्राष्ट्रीय योग महोत्सव का आयोजन किस मन्त्रालय द्वारा किया जाता है?

अ) आयुष मंत्रालय ब) संचार मंत्रालय

स) शिक्षा मंत्रालय द) इनमें से कोई नहीं

3) योग शब्द से तात्पर्य है –

अ) एकात्म ब) सामन्जस्य

स) समाधि द) उपर्युक्त सभी

4) शरीरस्थ धातुओं की संख्या है –

अ) चार ब) पाँच

स) सात द) आठ

5) सम्पूर्ण स्वास्थ्य के घटकों की संख्या है –

अ) चार ब) छः

स) आठ द) दस

प्रश्न 2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1) श्वास का नियमन ..... द्वारा किया जाता है। (नियम/प्राणायाम)

2) नयमात्मा .....लभ्यः। (अर्थहीनेन/बलहीनेन)

3) जीवेम .....शतम्। (शरदः/हेमन्तः)

4) मनश्चिकित्सा में .....की अत्यन्त उपयोगिता है। (आसन/ध्यान)

प्रश्न 3 निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताईए –

1) कैंसर जैसी असाध्य बीमारियों में प्राणायाम उपयोगी है। (सत्य/असत्य)

2) ध्यान के दौरान हमारे मस्तिष्क में 'विद्युतचुम्बकीय' तरंगें उत्पन्न होती हैं। (सत्य/असत्य)

3) आसनों से शरीर में रक्त का संचार नियंत्रित होता है।(सत्य/असत्य)

4) योगसूत्र के अनुसार योग के पाँच अङ्ग है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 4) सही जोड़ी का मिलान करें -

1) स्वास्थ्य	अ) तनाव प्रबंधन
2) षट्कर्म	ब) चोरी न करना
3) समाधि	स) शुद्धिकर्म
4) योग निद्रा	द) आनन्द की प्राप्ति
5) अस्तेय	ई) चार घटक

प्रश्न 5) अतिलघउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1) वसुधैवकुटुम्बकम् का अर्थ समझाईए।

2) स्वास्थ्य के घटकों की संख्या तथा नामों का उल्लेख कीजिए ?

3) प्रत्याहार से क्या तात्पर्य है?

4) यम-नियम के सभी अंगों के नाम लिखिए?

5) प्राणायाम से होने वाले लाभों का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 6) लघुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1) नाड़ीशोधन प्राणायाम का महत्व लिखिए।

2) आसनों के लाभ बताइए।

3) ध्यान से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए।

4) 'पहला सुख निरोगी काया'- वाक्य की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1) हठयोग सिद्धि के लक्षण बताते हुए शारीरिक शिक्षा के सन्दर्भ में योग के महत्व को समझाईए।

2) आयुर्वेद एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा को समझाईए। 'समग्र स्वास्थ्य' के संदर्भ में योग' की विस्तार से व्याख्या करें।

परियोजना कार्य

- ❖ योग शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा के मध्य समानता तथा अन्तरों पर चर्चा करें।
- ❖ योगाभ्यासों के माध्यम से स्वयं में आए परिवर्तनों और अनुभवों को जानकर एक रिपोर्ट तैयार करें एवं सहपाठियों के साथ सम्बन्धित विषयों पर चर्चा करें।

इकाई - चतुर्थ

श्रीमद्भगवद्गीता

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

4.1 भगवद्गीता परिचय

4.2 योगविद्या का उद्भव एवं श्री कृष्ण द्वारा योगविषयक उपदेश से सम्बन्धित उल्लेख

4.3योग की परिभाषाएँ

4.4 दिनचर्या एवं आहार से सम्बन्धित अवधारणा

4.5 भगवद्गीता में पथ्य

4.6 ज्ञानप्राप्ति का साधन

4.1 भगवद्गीता परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता सनातनधर्म के अत्यन्त महान् ग्रन्थों में से एक है, जो न केवल भारतवर्ष में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता का शाब्दिक अर्थ है – 'भगवान् द्वारा गाया हुआ ज्ञान का उपदेश'। महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र युद्ध में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का सन्देश प्रदान किया था। अतः स्पष्ट है कि गीता का उपदेश स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण (योगेश्वर) ने अर्जुन को दिया था, जिसमें मुख्यतः ज्ञान, भक्ति, कर्म एवं योग विषयक चर्चाओं का प्रतिपादन किया गया।

श्रीमद्भगवद्गीता, प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत के भीष्मपर्व का अङ्ग है, जो 18 अध्याय के अन्तर्गत 700 श्लोकों में रचित है । गीता के प्रत्येक अध्याय शीर्षक को 'योग' शब्द की सञ्ज्ञा दी है। जैसे – अध्याय 1- अर्जुनविषादयोग, अध्याय 2 – साङ्ख्ययोग, अध्याय 3 – कर्मयोग आदि। इस तथ्य की अनुभूति निम्न तालिका के अध्ययन से स्वतः होगी।

तालिका : अध्याय संख्या एवं उनके नाम

अध्याय संख्या	अध्याय के नाम
1.	अर्जुनविषादयोग
2.	सांख्ययोग
3.	सांख्य और योग
4.	ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग
5.	कर्मसंन्यास योग
6.	आत्मसंयम योग
7.	ज्ञानविज्ञान योग
8.	अक्षर ब्रह्मयोग
9.	राजगुह्ययोग
10.	विभूतियोग
11.	विश्वरूपदर्शन योग
12.	भक्तियोग
13.	क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योग
14.	गुणत्रय विभाग योग
15.	पुरुषोत्तमयोग
16.	देवासुर सम्पदा योग
17.	श्रद्धात्रय विभाग योग
18.	मोक्षसंन्यास योग

इस प्रकार प्रत्येक अध्याय योग-विषयक ही बताया गया है । अतः कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता एक योगविषयक ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता को प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है । प्रत्येक अध्याय के अन्त में पुष्पिका के अन्तर्गत **'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'** इस प्रकार उल्लेख मिलता है, जिसका तात्पर्य है कि यह योगशास्त्र-रूपी श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मविद्या का उपदेश है। कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की विशुद्ध त्रिवेणी ज्ञानगङ्गा का निरूपण भी श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तर्गत योग से सम्बन्धित उल्लेख वृहद् रूप में प्राप्त होते है। उनमें से कुछ उल्लेखों का निरूपण इस प्रकार है -

4.2 योगविद्या का उद्भव एवं श्री कृष्ण द्वारा योगविषयक उपदेश से सम्बन्धित उल्लेख –

श्रीमद्भगवद्गीता में 'योगेश्वर' श्रीकृष्ण के अनुसार -

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ – श्रीमद्भगवद्गीता 4.1-2

मैंने (श्रीकृष्ण भगवान् ने) इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग दीर्घ काल तक इस पृथ्वीलोक से लुप्तप्राय हो गया।

4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में योग की परिभाषाएँ –

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते । – *भगवद्गीता 2.48*

सिद्धि-असिद्धि, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ (हानि), राग-द्वेष, शीत-उष्ण आदि सभी द्वन्द्वों में सर्वत्र समता का भाव रखना ही योग है।

योगः कर्मसु कौशलम् । – *भगवद्गीता 2.50*

कर्मों में कुशलता को ही योग कहा गया है।

4.4 दिनचर्या एवं आहार से सम्बन्धित अवधारणा –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ - *भगवद्गीता 6.17*

जो मनुष्य युक्त (सन्तुलित) आहार और विहार करने वाला, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाला अर्थात् कर्मयोगी होता है तथा परिमित शयन एवं जागरण करता है, ऐसे योगी (योगाभ्यासी) के समस्त दुःखों का नाश हो जाता है।

4.5 भगवद्गीता में पथ्य-अपथ्य आहार के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है –

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।

रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

आहाराः राजसस्येष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

- श्रीमद्भगवद्गीता - 17.8-10

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय यह सात्त्विक पुरुष को प्रिय सात्त्विक (पथ्य) आहार है । कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गर्म, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता एवं रोग उत्पन्न करने वाले आहार राजस-पुरुष को प्रिय आहार है । जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी एवम् उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस-पुरुष को प्रिय तामसिक (अपथ्य) आहार है।

4.6 ज्ञान की प्राप्ति का साधन -

भगवद्गीता में कहा गया है कि -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ - भगवद्गीता (4.34-36)

उस ज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के सान्निध्य में जाकर ग्रहण करो। उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने से, सेवा करने एवं आदरपूर्वक प्रश्न करने से वे तुम्हें उस का उपदेश प्रदान करेंगे।

हे अर्जुन! जिसे जानकर फिर तुम इस प्रकार मोह को नहीं प्राप्त होंगे। जिस ज्ञान के द्वारा तुम सम्पूर्ण भूतों को पहले स्वयं में एवं तत्पश्चात मुझ (परमात्मा) में देखोगे।

यदि तुम अन्य अज्ञानियों से भी अधिक अज्ञानी हो, तब भी इस ज्ञान रूपी नाव द्वारा निःसंदेह पाप-समुद्र को पार कर जाओंगे।

4.7 भगवद्गीता में ध्यानाभ्यास का वर्णन –

ध्यान की विधि बताते हुए भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने इस तरह वर्णन किया है -

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ – भगवद्गीता 6.11-13

शुद्ध भूमि (पवित्र स्थान) पर कुशा, स्वच्छ वस्त्रादि बिछे हों, जो न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा हो, ऐसे आसन का स्थापन करके उस आसन पर बैठकर चित्त (मन) एवम् इन्द्रियों की क्रिया को वश में करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि हेतु योगाभ्यास (ध्यान) करें। ध्यान हेतु काया (धड़), सिर एवं गर्दन को समवेत एवं निश्चल रखते हुए स्थिर होकर अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाए। अन्य विषयों अथवा वस्तुओं से ध्यान हटाकर परमात्मा में अपने चित्त को लगाकर रखें।

प्रश्नावली

प्रश्न 1. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए –

1) भगवद्गीता के अन्तर्गत कितने अध्याय निहित है –

2) भगवद्गीता में 'भक्तियोग' किस अध्याय का नाम है –

3) भगवद्गीता में आहार के कितने प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है –

4) प्रस्थानत्रयी कहा गया है –

5) भगवद्गीता में कुल श्लोक संख्या मानी जाती है –

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1) समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं.....। (स्थिरः/धीरः)

2) रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः.....। (तामसिकप्रियाः/सात्त्विकप्रियाः)

3) योगः ..... कौशलम्। (अर्थसु/कर्मसु)

4) इमं विवस्वते .....प्रोक्तवानहमव्ययम्। (योगं/ज्ञानं)

5) भगवद्गीता में कर्मयोग नामक अध्याय संख्या ..... है। (द्वितीय/तृतीय)

प्रश्न 3. निम्नलिखित वाक्यों में से सत्य/असत्य वाक्य बताईए –

1) भगवद्गीता के अन्तर्गत तीन प्रकार के आहारों का वर्णन प्राप्त होता है। (सत्य/असत्य)

2) भगवद्गीता एक महान् योगविषयक शास्त्र है। (सत्य/असत्य)

3) ध्यानाभ्यास का उल्लेख भगवद्गीता में प्राप्त नहीं होता। (सत्य/असत्य)

4) सांख्य योग नामक अध्याय की संख्या द्वितीय है। (सत्य/असत्य)

5) ध्यानाभ्यास के समय सिर, ग्रीवा तथा शरीर सीधा होना चाहिए। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 4. सही जोड़ियाँ बनाईयें –

1)	पुरुषोत्तम योग	अ) युक्ताहारविहार
2)	ध्यानाभ्यास का वर्णन	ब) समत्व
3)	ईश्वर प्रणिधान	स) एकादश अध्याय
4)	योग	द) भक्तियोग
5)	दिनचर्या	ई) षष्ठम् अध्याय

इकाई - पञ्चम्

योग के विभिन्न अभ्यास

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

5.1 **योगाभ्यास तथा योगासन के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश।**

5.2 **सूक्ष्म व्यायाम-अभ्यास-**

- ❖ नेत्र एवं ग्रीवा (गर्दन), स्कन्ध (कन्धा), कटि (कमर), घुटने एवं पैर।

5.3 **सूर्यनमस्कार (बीज मन्त्र सहित)-**

5.4 **योगासन -**

- ❖ योगासन की परिभाषा एवं प्रकार।
- ❖ आसनों के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश

ताड़ासन,वृक्षासन,कटिचक्रासन,त्रिकोणासन, पद्मासन, वज्रासन, भुजंगासन, योगमुद्रासन, पवनमुक्तासन, सेतुबन्धासन, उत्तानपादासन, शवासन एवं उक्त आसनों के प्रकारान्तर।

5.1 योगाभ्यास तथा योगासन के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश -

- ➢ सदा स्वच्छ एवं पवित्र वातावरण में ही योगाभ्यास करें।
- ➢ दरी, आसन, बिछावन (Mat) इत्यादि पर ही योगाभ्यास करें तथा आरामदायक एवं ढीले वस्त्रों को ही पहनें।
- ➢ योगाभ्यासों को नित्य शौच से निवृत्त होकर एवं खाली पेट ही करें।
- ➢ योग के अभ्यासों को मङ्गलाचरण एवं प्रार्थना के पश्चात् ही प्रारम्भ करना चाहिए। अभ्यासों के लिए मन का शान्त एवं सात्त्विक होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रार्थना के माध्यम से मन एवं शरीर में सकारात्मकता का सञ्चार होता है।
- ➢ योगासनों से पूर्व सूक्ष्म व्यायाम का जरूर अभ्यास करें।
- ➢ योगासनों को करते समय यथासम्भव अपने अङ्गों को मोड़ें एवं तनाव देवें। सामर्थ्य से ज्यादा किसी भी आसन में शरीर को तनाव न होने दें, अन्यथा पीड़ा हो सकती है। अतः प्रतिस्पर्द्धा में न लगते हुए सामर्थ्यानुसार योगासनों का अभ्यास करें।

- योगाभ्यासों के दौरान कभी भी थकान महसूस होने पर शवासन अथवा विराम लिया जा सकता है।
- योगाभ्यासों के पूर्व ऋतु के अनुसार शीतल अथवा उष्ण जल से नहाना चाहिए।
- योगाभ्यास के साथ-साथ यम एवं नियम का विशेषरूप से पालन करें। साथ ही हल्का, सुपाच्य, ताजा और सात्त्विक आहार ही लेवें।
- योगाभ्यास सदा गुरु के सान्निध्य में ही करें एवं कोई भी रोग या व्याधि हो, तो उसकी जानकारी गुरु को अवश्य देवें।
- योगाभ्यासों में श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य रखें। केवल तभी श्वास-प्रश्वास में विशेष-रूप से परिवर्तन करें जब आसन एवं प्राणायाम के अभ्यास के दौरान निर्देशित किया जाए।
- विद्यालय के पश्चात् घर पर भी सिखाए गए अभ्यासों को करें।
- योग व्यायाम के अभ्यास ही नहीं, वरन् चरित्र-निर्माण के अभ्यास हैं। अतः सदा नैतिक मूल्यों का पालन करें।

5.2 सूक्ष्म व्यायाम अभ्यास

आसनों के अभ्यास से पूर्व सूक्ष्म व्यायाम के अभ्यास से शरीर में ऊष्मा एवं सूक्ष्म सञ्चरण का प्रवाह उत्पन्न होता है, जिससे आसनों के अभ्यास के दौरान किसी प्रकार की चोट-मोच या हानि की सम्भावना ना बन पाए ।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तिका में क्रमशः ग्रीवा, स्कन्ध, कटि एवं घुटनों से सम्बन्धित सूक्ष्म व्यायाम का विवरण दिया गया है, जिससे सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों में लचीलापन तथा योगासनों के अभ्यास हेतु क्षमता का विकास हो सके।

➢ **ग्रीवा के सूक्ष्म व्यायाम -**

प्रथम अभ्यास (आगे से पीछे की ओर झुकना) –

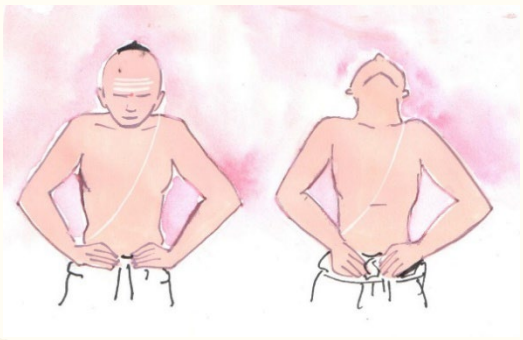

1. पैरों को कन्धों की सीध में रखते हुए सीधे खड़े हो जाएँ।
2. अभ्यास के दौरान हाथों को कमर पर रखें एवं श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को धीरे-धीरे आगे की ओर झुकाएँ। ठोड़ी को वक्षःस्थल (छाती) पर स्पर्श कराने का प्रयास करें।
3. श्वास को अन्दर लेते हुए सिर को जितना पीछे हो सके, उतना ले जाएँ। इस विधि को दोनों ओर से 5 बार दोहराएँ।

द्वितीय अभ्यास (दायीं एवं बायीं ओर झुकना) -

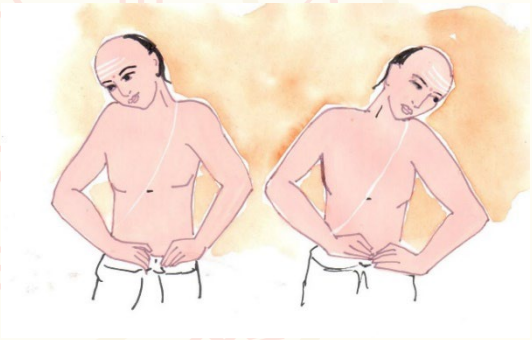

1. श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को धीरे-धीरे दायीं ओर झुकाएँ एवं कानों को कन्धों के यथासम्भव समीप लाने का प्रयास करें। इस बात का ध्यान रखें कि कन्धे ऊपर की ओर अधिक नहीं उठे होने चाहिए।
2. श्वास लेते हुए सिर को पुनः सामान्य-स्थिति में लाएँ। इसी प्रकार श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को दाईं तरफ झुकाएँ एवं पुनः श्वास लेते हुए सिर को सामान्य-स्थिति में लेकर आएँ।
3. यह एक चक्र पूर्ण हुआ। इस विधि को 5 बार दोहराएँ।

तृतीय अभ्यास (दाएँ से बाएँ घुमाना) -

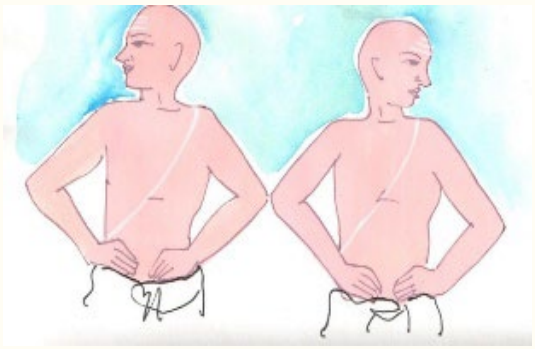

1. सिर को सीधा रखें एवं हाथों को कमर पर रखें।
2. श्वास को छोड़ते हुए सिर को धीरे-धीरे दायीं ओर घुमाएँ।
3. श्वास को अन्दर लेते हुए सिर को सामान्य स्थिति में ले आएँ। इसी प्रकार श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को बाएँ ओर घुमाएँ एवं पुनः श्वास लेते हुए सिर को सामान्य स्थिति में लाएँ।
4. यह एक चक्र पूर्ण हुआ; इस विधि को 5 बार दोहराएँ।

चतुर्थ अभ्यास (ग्रीवा को घुमाना) -

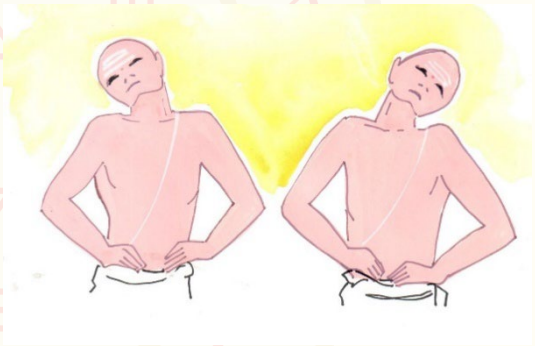

1. श्वास छोड़ते हुए सिर को आगे की ओर झुकाएँ और ठोड़ी को सीने से स्पर्श कराने का प्रयास करें ।
2. श्वास लेते हुए सिर को धीरे-धीरे घड़ी की सुई की दिशा में गोलाकार घुमाएँ। तथा वापस लाते समय श्वास को बाहर छोड़ें ।
3. श्वास लेते हुए गर्दन पीछे ले जाएँ और श्वास को छोड़ते समय पुनः ले आएँ ।
4. इस प्रकार ग्रीवा एक बार पूरी तरह से घुमाएँ तत्पश्चात् ग्रीवा को घड़ी की विपरीत-दिशा में घुमाएँ ।
5. यह एक चक्र पूर्ण हुआ। इस विधि को पाँच बार दोहराएँ।

सावधानी -

- ग्रीवा को जितना सम्भव हो उतना ही घुमाएँ ।अधिक खिंचाव एवं तनाव उत्पन्न ना करें । कन्धों, गर्दन को शिथिल एवं स्थिर रखना चाहिए।
- ग्रीवा के आस-पास हो रहे मांसपेशियों के खिंचाव को अनुभव करना चाहिए।

➢ **स्कन्ध के सूक्ष्म व्यायाम**

प्रथम अभ्यास (स्कन्ध खिंचाव) -

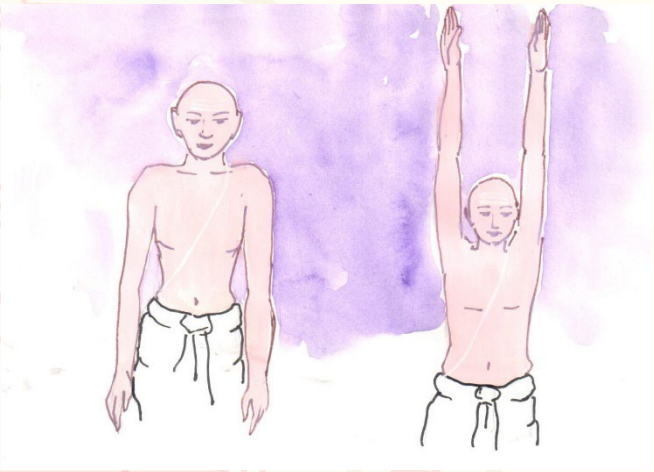

1. दोनों पैरों को मिलाएँ। शरीर को सीधा रखते हुए खड़े रहें ।
2. दोनों भुजाओं को सिर के ऊपर उठाते हुए हथेलियाँ ऊपर की दिशा में रखें। इसी क्रिया को नीचे की ओर भी दोहराएँ।
3. जब हाथ को सिर से ऊपर ले जाएँ तो वे सिर से स्पर्श ना करें, उसी प्रकार जब हाथ को नीचे की ओर ले जाएँ तब जङ्घाओं से स्पर्श ना करें।
4. हाथों को ऊपर ले जाते हुए श्वास लें एवं नीचे लाते हुए श्वास छोड़ें।

टिप्पणी – इसका अभ्यास एक-एक हाथ ऊपर एवं नीचे क्रमवार रूप से रखते हुए भी किया जा सकता है।

द्वितीय अभ्यास (स्कन्ध चक्र चालन) –

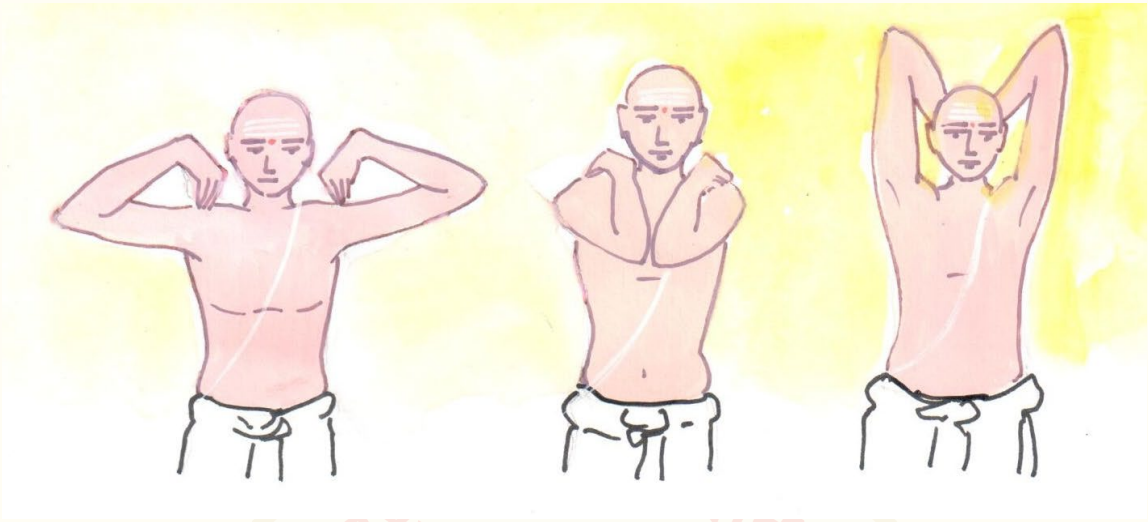

1. सीधे खड़े हो जाएँ एवं कन्धों को सीधा रखें।
2. बाएँ हाथ की अँगुलियों को बाएँ कन्धे पर तथा दाएँ हाथ की अँगुलियों को दाएँ कन्धे पर रखें।
3. दोनों कोहनियों को गोलाकार घुमाएँ। कोहनियों को आगे की ओर लाते हुए वक्षःस्थल के सामने स्पर्श करने का प्रयास करें।
4. इसीके विपरीत ओर घूमने पर हाथों को कानों से स्पर्श कराने का प्रयास करें।
5. इस अभ्यास को 5-10 बार दोहराएँ।

लाभ -

- इनके अभ्यास से रीढ़ की हड्डी, स्कन्ध, मांसपेशियाँ एवं हड्डियाँ मजबूत तथा स्वस्थ होती हैं। यह तन्त्रिकाओं को सुदृढ़ बनाता है।
- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस की बीमारी में अत्यन्त लाभदायक है।

➢ **कटि के सूक्ष्म व्यायाम**

1. दोनों पैरों के बीच 2 से 3 फीट की दूरी रखते हुए दोनों भुजाओं को कन्धों के समानान्तर उठाएँ। दोनों हथेलियाँ समानान्तर स्थिति में एक-दूसरे के सामने होनी चाहिए।

2. श्वास को बाहर छोड़ते हुए शरीर को बाईं ओर घुमाएँ। श्वास को अन्दर लेते हुए पुनः पूर्व-अवस्था में आ जाएँ।

3. इसी प्रकार श्वास को बाहर छोड़ते हुए शरीर को दाएँ ओर घूमाएँ, एवं पुनः श्वास लेते हुए पूर्व स्थिति में लौट आयें।

4. इस प्रकार यह एक चक्र पूर्ण हुआ। इस विधि को 5 बार दोहराएँ।

सावधानी -

- हृदय-रोगियों को इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
- गम्भीर पीठ दर्द, स्लिप डिस्क, उदर-अङ्गों के आपरेशन आदि स्तिथियों में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सहजतापूर्वक श्वास लेते हुए इसका अभ्यास करना चाहिए।

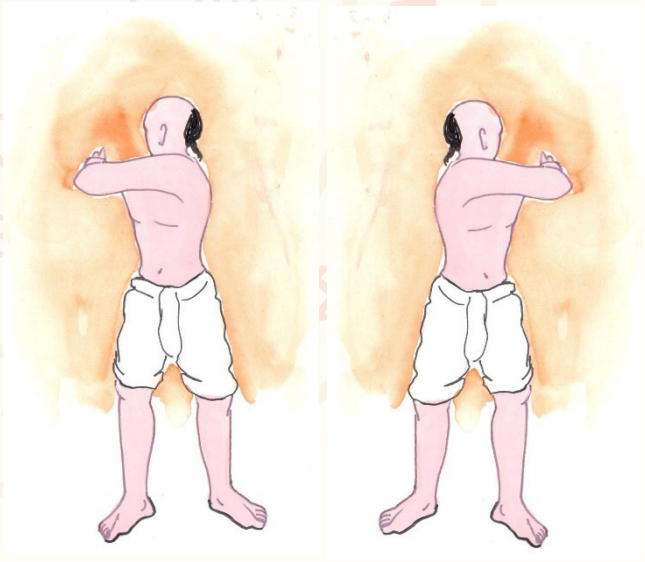

➢ **घुटने एवं पैर के सूक्ष्म व्यायाम**

1. सर्वप्रथम शरीर को सीधा रखते हुए खड़े हो जाएँ। पैरों को कन्धों के समानान्तर दूरी पर रखें।

2. श्वास लेते हुए दोनों भुजाओं को कन्धों के स्तर तक लेकर आएँ तथा हथेलियों को नीचे की ओर रखें।

3. श्वास छोड़ते हुए घुटनों को मोड़ें एवम् अपने शरीर को कुर्सी पर बैठने की स्थिति में लेकर आएँ। हाथों को सीधा एवं जङ्घाओं को भूमि से समानान्तर रखें।

4. पुनः श्वास लेते हुए को शरीर को सीधा रखें, एवं हाथों को पूर्वावस्था में ले आएँ। इस विधि को 5 बार दोहराएँ।

सावधानी -

- घुटनों-कूल्हों के जोड़ों की पीड़ा में, ऑर्थोराइटिस , स्लिपडिस्क में इसका अभ्यास न करें।

5.3 सूर्यनमस्कार

सूर्यनमस्कार से तात्पर्य है- भगवान् सूर्य के प्रति नमन एवम् आदर का भाव। वैदिकयुग के महान् ऋषि-मुनियों के द्वारा ही हमें सूर्योपासना की परम्परा प्राप्त हुई है। वेदों में सूर्य को सम्पूर्ण सृष्टि का प्राण एवं जीवनी-शक्ति बताया गया है। भारत में प्राचीनकाल से ही नित्य प्रातःकाल सन्ध्योपासना, सूर्यनमस्कार एवं योगाभ्यास करने की परम्परा रही है। सूर्यनमस्कार करने से शारीरिक एवं मानसिक क्लेशों का नाश होता है तथा मनुष्य आध्यात्मिक-उन्नति को प्राप्त होता है। अतः कहा भी गया है -

आदित्यस्य नमस्कारान् , ये कुर्वन्ति दिने दिने।

आयुः प्रज्ञा बलं वीर्यं, तेजस्तेषां च जायते ॥

जो नित्य भगवान् आदित्य (सूर्य) को नमस्कार करते हैं, उन्हें दीर्घायु, श्रेष्ठ बुद्धि, विवेक, बल, ओज तथा तेज की प्राप्त होती है।

सूर्यनमस्कार के अभ्यास से शरीर के सभी अङ्ग, सन्धियाँ, मांसपेशियाँ एवं सम्पूर्ण नाड़ी-मण्डल स्वस्थ एवं सुचारु होते हैं। शरीर में लचीलापन एवं रक्त-सञ्चरण की वृद्धि होती है तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की प्रक्रिया का नियमन होता है। सूर्यनमस्कार विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक अभ्यास माना जाता है। इसके 12 चरणों में कई आसन-समूहों के अभ्यास स्वतः ही हो जाते हैं। नित्य 12 सूर्यनमस्कार करने से विद्यार्थी अद्भुत बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमताओं, ऊर्जा, आरोग्य तथा जीवनी-शक्ति से लाभान्वित हो सकते हैं।

सूर्यनमस्कार के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

प्रथम स्थिति - (नमस्कार मुद्रा)

पूर्वदिशा में मुहँ करके दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की मुद्रा में सीधे खड़े हो जाएँ। कोहनियाँ एकदम जमीन की ओर रुख करती हुई पृथ्वी के समानान्तर हों, श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य हो, गहरी लम्बी श्वास लें। अनाहतचक्र अर्थात् हृदय स्थान पर ध्यान करते हुए सूर्यदेव का ध्यान करें। 'ॐ मित्राय नमः' मन्त्र का सुदीर्घ उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रां' ।

द्वितीय स्थिति - (हस्त उत्तानासन)

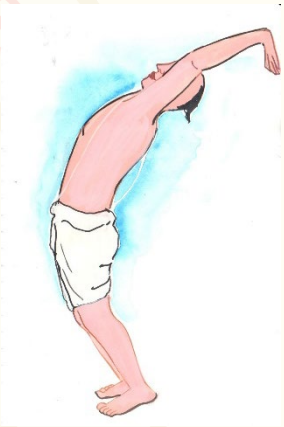

सूर्य-नमस्कार के दूसरे सोपान में दोनों भुजाओं को सीधा करके सिर से ऊपर ले जाइये। गहरा लम्बा श्वास लेकर शरीर एवं भुजाओं को तानिये। कन्धों को कानों से स्पर्श कराते हुए रखे। भुजाएँ, सिर और ऊपरी धड़ को धीरे-धीरे पीछे की ओर जितना झुका सकें, झुकाइये। मन की एकाग्रता विशुद्धि-चक्र (कण्ठ स्थान) पर करते हुए 'ॐ रवये नमः' मन्त्र का उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रीं' ।

तृतीय स्थिति - (पाद हस्तासन)

अब तीसरी स्थिति में श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर धीरे-धीरे झुकते चले जायें जब तक कि हाथों से पंजों का स्पर्श पैरों से न हो जाये। मस्तक को घुटनों से स्पर्श कराएँ, घुटने मुड़ने नहीं पायें। पैर सीधे और सम रहें। अधिक से अधिक श्वास बाहर निकाल फेंकने के लिये पेट का सङ्कुचन करें। स्वाधिष्ठान चक्र (पेडूस्थान) पर ध्यान एकाग्र करते हुए 'ॐ सूर्याय नमः' मन्त्र का उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रूं' ।

चतुर्थ स्थिति - (अश्वसञ्चालनासन)

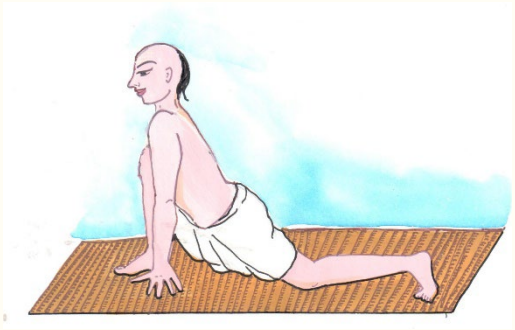

अब सूर्य-नमस्कार की इस चौथी स्थिति में श्वास लम्बा खींचते हुए बाँयें पैर को जितना सम्भव हो सके, पीछे की ओर फैलाइएँ। श्वास लेते हुए दाँयें पैर को पीछे की ओर तथा बाएँ पैर को घुटने से मोड़ें । सिर को पीछे की ओर खींचते हुए रीढ़ को कमान की आकृति में मोड़ते हुए आकाश की ओर देखें। आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य पर) ध्यान केन्द्रित करते हुए 'ॐ भानवे नमः' मन्त्र का सुदीर्घ उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रैं' ।

पञ्चम स्थिति - (पर्वतासन)

पाँचवीं स्थिति में दाये पैर को पीछे ले जाकर बाँये पैर के बराबरी पर, जमीन पर रखें। दोनों पैरों के पूरे तलवे (एड़ी, पंजा सहित) जमीन पर बलपूर्वक टिकाये। साँस बाहर छोड़ते हुए कमर व नितम्बों को जितना ऊपर उठा सके, अधिकतम ऊँचाई तक ऊपर उठावे। दृष्टि नाभिपर रहे। ध्यान की एकाग्रता विशुद्धि-चक्र कण्ठस्थान पर रखे। 'ॐ खगाय नमः' मन्त्र का उच्चस्वर से सुदीर्घ उचारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रौं' ।

षष्ठ स्थिति - (अष्टाङ्ग नमस्कार)

सूर्य-नमस्कार के षष्ठ सोपान में दोनों घुटनों को जमीन पर टिकायें, पाँवों के दोनों पंजों को पलट कर तलवे ऊपर आकाश की ओर तथा पंजों का पृष्ठ भाग नीचे भूमि पर स्पर्श कराये। अब शरीर के आठ अङ्ग - दोनों हाथ, दोनों पाँव, दोनों घुटने, एक ठोड़ी

और वक्षःस्थल को जमीन पर टिकाएँ। इस स्थिति में मन की एकाग्रता मणिपुर-चक्र (नाभिस्थान) पर धारित करते हुए 'ॐ पूष्णे नमः' मन्त्र का सुदीर्घ उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रः' ।

सप्तम स्थिति - (भुजङ्गासन)

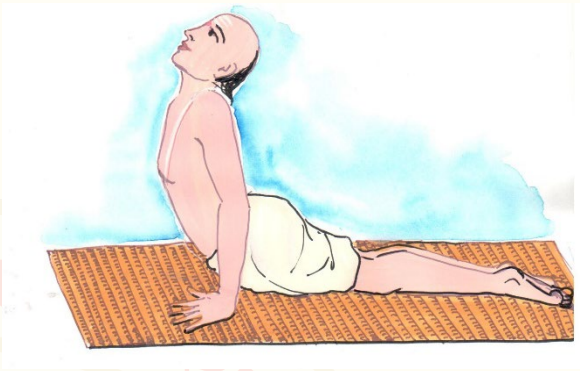

इस स्थिति हेतु जमीन पर रखे हुए हाथों के पँजों को जमीन पर ही टिके हुए रहने दें, किन्तु कोहनी को सीधा करके तान लें। अब पूरक द्वारा श्वास भरते हुए सिर तथा गर्दन को ऊपर उठा कर पीछे की ओर तानें। दृष्टि आसमान की तरफ कर लें। कमर को धनुषाकार बनाते हुए स्वाधिष्ठान-चक्र (नाभि से नीचे पेडू स्थान) पर ध्यान केन्द्रित करें। इस स्थिति को साधते हुए 'ॐ हिरण्यगर्भाय नमः' मन्त्र का उच्चारण उच्च स्वर में करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रां' ।

अष्टम स्थिति - (पर्वतासन)

इस स्थिति को बनाने के लिये शरीर को सामान्य शिथिल करते हुए दोनों पैरों के पंजों को पुनः पलटकर तलवे भूमि पर स्थापित करें। श्वास छोड़ते हुए हाथों एवं पाँवों के बीच की दूरी कम करते हुए थोड़ा समीप लाएँ। कमर एवं कूल्हों को ऊपर आकाश की ओर उठाकर तानें। एड़ी सहित पूरा पंजा जमीन पर बलपूर्वक जमावें। यह स्थिति पूर्व में की गई स्थिति क्रमाङ्क 5 की पुनरावृत्ति है। इसमें भी पर्वतासन की स्थिति बनती है। 'ॐ मरीचये नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए विशुद्धि-चक्र (कण्ठस्थान) पर एकाग्रता केन्द्रित करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रीं'।

नवम स्थिति - (अश्व-सञ्चालनासन)

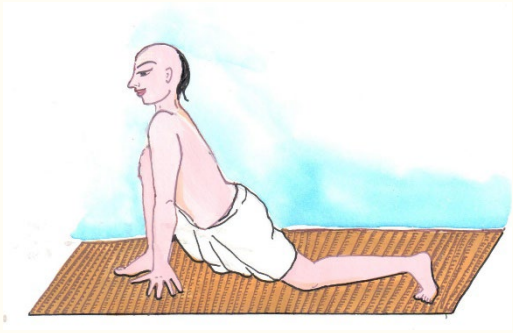

स्थिति 9 को बनाने के लिये बायें पैर को आगे लायें। पैर को दोनों हाथों की सीध में तथा उनके ठीक बीच में रखें। बाँये पैर के घुटने को सीधा करके वहीं जमे रहने दें। दोनों भुजाएँ अपने-अपने स्थान पर ही रहें किन्तु उन्हें सीधी तानकर रखें। सिर एवं सीने को ऊपर उठाते हुए गहरी लम्बी साँस लें। सिर को थोड़ा पीछे की ओर तानें। एकाग्रता आज्ञा-चक्र (भ्रूमध्य) पर करते हुए 'ॐ आदित्याय नमः' मन्त्र का सस्वर सुदीर्घ उच्चारण कीजिये। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रूं' ।

दशम स्थिति - (पादहस्तासन)

अब स्थिति 10 में आने के लिये दाहिने पैर के पंजे को आगे लाकर बाँये पैर के पंजे के पास बराबरी पर स्थापित करें। श्वास छोड़ते हुए पैरों को सीधा तानें और हाथों को पैरों के आस-पास रखते हुए सीधा तानें। कमर व नितम्बों को आकाश की तरफ ऊँचा उठावें। मस्तक को घुटनों से स्पर्श करावें। पूर्व-स्थिति 3 की यह पुनरावृत्ति है। स्वाधिष्ठान-चक्र (नाभि से नीचे पेडू स्थान) पर ध्यान केन्द्रित करते हुए 'ॐ सवित्रे नमः' मन्त्र का सुदीर्घ उच्चारण करें। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रैं' ।

एकादश स्थिति (हस्त उत्तानासन)

यह स्थिति पूर्व स्थिति 2 की पुनरावृत्ति है। इस स्थिति में स्थित होने के लिये श्वास भीतर खींचते हुए और दोनों भुजाओं को कानों से स्पर्श कराते हुए सिर से ऊपर उठाकर ताना जाता है। धड़, सिर एवं भुजाओं को पीछे की ओर यथासम्भव झुकाया जाता है। यही स्थिति हस्त उत्तानासन की है। इस स्थिति को बनाकर विशुद्धि-चक्र (कण्ठस्थान) पर ध्यान केन्द्रित करते हुए 'ॐ अर्काय नमः' मन्त्र का सुदीर्घ उच्चारण किया जाता है। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रौं' ।

द्वादश स्थिति (नमस्कार मुद्रा)

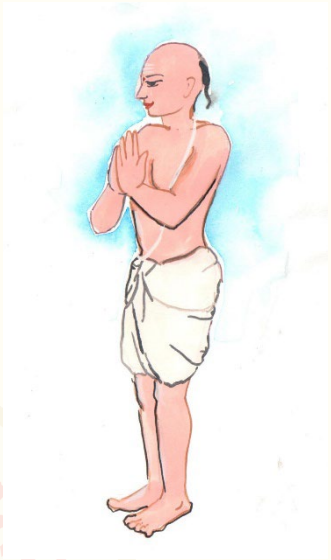

यह सूर्य-नमस्कार की बारहवीं और अन्तिम कड़ी है। यह नमस्कार की प्रथम स्थिति की पुनरावृत्ति भी है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये नमस्कार मुद्रा में दोनों हाथों को जोड़कर सीधे खड़े हो जाएँ। श्वास-प्रश्वास सामान्य-रूप से चलने देना चाहिये। एकाग्रता अनाहतचक्र (हृदय-स्थान) पर रखते हुए 'ॐ भास्कराय नमः' का सुदीर्घ उच्चारण करें। ऐसा करते हुए सूर्य नमस्कार पूर्ण हो जाता है। बीज-मन्त्र - 'ॐ ह्रः'।

लाभ

- सूर्य नमस्कार के अभ्यास के द्वारा मानसिक एवं शारीरिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा का सन्तुलन प्राप्त होता है। शरीर की सभी क्रियाओं को सुव्यवस्थित करने में सूर्य नमस्कार अति लाभदायक हैं। वहीं मानसिक स्वास्थ्य, बुद्धि, एकाग्रता तथा स्मरण शक्ति को बढ़ाने में भी लाभदायक सिद्ध होता है। अतः विद्यार्थियों के लिए सूर्य नमस्कार का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक होता है।
- यह प्राणशक्ति का सञ्चार कर शरीर में बल, बुद्धि, तेज, ओज एवं सामर्थ्य बढ़ाने में अत्यन्त सहायक है।
- यह शरीर की अधिक चर्बी को हटाने में सहायता करता है ।
- यह कब्ज़ को दूर करने में सहायता करता है और शरीर के रक्त सञ्चार में सुधार करता है।
- यह शरीर को ऊर्जाप्रदान करता है ।
- यह बढ़ते हुए बच्चों की लंबाई बढ़ाने और उनके शरीर को स्वस्थ रखने में सहायता करता है ।
- यह शरीर को बल प्रदान करता है और मन को स्फूर्ति से युक्त बनाता है ।

- इससे पेट के अङ्गों में खिंचाव होता है और पाचन क्षमता में सधुार होता है ।

सीमाएँ

- उच्च रक्तचाप, बुखार, हृदय-रोग, हर्निया, स्लिप-डिस्क, आन्त्र-तपेदिक और साइटिका (Sciatica) होने पर सूर्यनमस्कार का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

5.4 आसन

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥

आसन, हठयोग का प्रथम अङ्ग है, अतः सर्वप्रथम उसका निरूपण करते हैं। आसन (मानसिक एवं शारीरिक) स्थिरता, आरोग्य तथा अङ्गों में हल्कापन (का अनुभव) लाता है।

- हठयोगप्रदीपिका - 1.7

'आसन' का शाब्दिक अर्थ है - 'बैठने की मुद्रा' या 'वह वस्तु, जिस पर बैठा जाए।' योगासन हमारे महान् ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त योगविद्या का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, जिसमें शारीरिक अङ्गों की चेतना, संवेगों एवं चेष्टाओं को नियन्त्रित करते हुए विशेष शारीरिक स्थितियों एवं मुद्राओं का निर्माण किया जाता है।

स्थिरसुखमासनम् ॥

वह शारीरिक-स्थिति जो सुखद एवं स्थिर है, अर्थात् जिस स्थिति में स्थिर एवं निश्चल होकर (बिना हिलन-चलन के) दीर्घ काल तक सुखपूर्वक बैठा जा सके, वह आसन है।

- योगदर्शन 2.46

आसनों के अभ्यास से हमारे शरीर के विभिन्न अङ्गों पर दबाव एवं खिंचाव होने के कारण आन्तरिक अवयवों की मालिश होती है एवम् उनमें रक्त-सञ्चरण तथा ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। शरीर में व्याप्त रोगों एवं व्याधियों का शमन होता है तथा शारीरिक स्वास्थ्य के विभिन्न गुणों जैसे लचीलापन, दक्षता, स्फूर्ति, सत्त्वगुण, सकारात्मक ऊर्जा आदि का विकास होता है।

'हठयोगप्रदीपिका' में आसन से होने वाले लाभ का वर्णन करते हुए कहा है कि -

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम् ॥

आसन करने के पश्चात् शरीर एवं मन में स्थिरता, आरोग्य (रोग से मुक्ति) एवम् अङ्गों में लाघव (हल्कापन) आता है।

– हठप्रदीपिका 1.17

आसनों का अभ्यास केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही प्रदान नहीं करता, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य एवम् आत्मिक चेतना के विकास में भी यह अत्यन्त लाभदायी होते हैं।

योगासन की सिद्धि हेतु निम्न उपाय पातञ्जलयोगदर्शन में वर्णित हैं -

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥

शरीर-सम्बन्धी सभी प्रकार की क्रियाओं एवं तनाव को त्याग देना ही प्रयत्न की शिथिलता कही गई है। अतः इन चेष्टा-रूपी प्रयत्नों को त्यागकर नित्य अनन्त में समर्पित होने से ही आसनों की सिद्धि हो जाती है। *– योगदर्शन 2.47*

योग-आसनों से जहाँ तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous System), स्नायु स्वस्थ होते हैं, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निष्कासित स्रावों (Harmones) का प्रवाह समुचित तथा नियन्त्रित होता है, जिससे मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, वहीं शरीर में स्थित चक्रों पर सूक्ष्म (Subtle) स्तर पर प्रभाव पड़ने के कारण आध्यात्मिकता के विषय में भी आसनों का अभ्यास विशेष लाभदायी है।

शरीररचना-शास्त्र के आधार पर आसनों को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. **ध्यानात्मक आसन -**

वे सभी आसन जिनमें लम्बे समय तक निश्चल बैठा जा सके। शक्ति का व्यय कम हो तथा ध्यान की प्रक्रिया में सहायक हो; ऐसे आसन ध्यानात्मक की श्रेणी में आते हैं। जैसे - पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन आदि।

2. **शरीर-संवर्धनात्मक आसन -**

इनके अन्तर्गत उन सभी आसनों का समावेश किया गया है, जिसके द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। इन आसनों में गत्यात्मक रूप से शरीर को विभिन्न प्रकार से मोड़ना, तानना एवम् अनेक प्रकार की मुद्राओं में शरीर को स्थिर रखना आदि किया जाता है। इनके अभ्यास से शरीर का परिसञ्चरण तन्त्र, स्नायु एवं तन्त्रिका तन्त्र, पाचन-तन्त्र, उत्सर्जन-तन्त्र, अन्तःस्रावी तन्त्र आदि शारीरिक तन्त्र एवं संस्थान स्वस्थ व सुचारु होते हैं। भुजङ्गासन, धनुरासन, नौकासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, हलासन, उष्ट्रासन, शीर्षासन आदि शरीर संवर्धनात्मक आसनों के उदाहरण हैं।

3. **शरीर शिथिलीकरण एवं विश्रान्तिकारक आसन -**

शारीरिक थकान, व्याधियों एवं मानसिक-तनाव को दूर करके शरीर एवं मन को पूर्ण शिथिल एवं विश्रान्ति प्रदान करने वाले आसन शिथिलीकरण- आसन की श्रेणी में आते हैं। शवासन, मकरासन, योगनिद्रा आदि शरीर- शिथिलीकरण हेतु मुख्य योगाभ्यास कहे गए हैं।

आसनों के अभ्यास हेतु सामान्य दिशा-निर्देश -

- आसनों का अभ्यास शारीरिक क्षमता से अधिक न करें।
- धीरे-धीरे समय एवं मात्रा बढावें।
- प्रारम्भ में जितना बन सके, उतनी ही शुद्धता में सन्तोष करना चाहिए।
- धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे आदर्श-स्वरूप की ओर अभ्यास बढ़ना चाहिए क्योंकि अङ्गों पर अधिक बल प्रयोग करने से हानि होने की सम्भावना होती है।
- वस्तुतः आसनों का अभ्यास खुली हवा में करना चाहिए किन्तु अधिक सर्दी, गर्मी, धूप, वर्षा आदि से बचना चाहिए।
- योगासनों के अभ्यास के दौरान श्वास-प्रश्वास की स्थिति सामान्य होनी चाहिए परन्तु निर्देश के अनुसार परिवर्तन होना आवश्यक है। सामान्यतः योगासनों में ऊपर की ओर जाने पर श्वास लेना चाहिए। उसीके विपरीत नीचे की ओर जाने पर श्वास छोड़ना चाहिए।

- ❖ अभ्यास के दौरान कभी भी थकान महसूस होने पर शवासन किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास एवं शरीर में हो रहे सभी परिवर्तनों के प्रति पूरी सजगता का भाव रखना चाहिए।
- ❖ प्रत्येक आसन के पश्चात् उक्त आसन के लिए वर्णित विपरीत आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। क्लिष्ट एवं तकनीकी आसन जैसे, शीर्षासन, मयूरासन, सर्वाङ्गासन, चक्रासन आदि का अभ्यास गुरु की देख-रेख में ही करना चाहिए।
- ❖ सामान्यतः योग के अभ्यासों को प्रातः सूर्योदय से पहले उठकर करना चाहिए, परन्तु सायङ्काल में भी इनका अभ्यास किया जा सकता है। प्रातः शौच के पश्चात् एवं सायङ्काल भोजन के पूर्व ही इनका अभ्यास करें।

आसनों के लाभ -

- आसनों के अभ्यास से शरीर के अङ्गों में लचीलापन और मजबूती आती है।
- शरीर के अनेक रोग, जैसे - कब्ज, मल, विकार, विषाक्तता, अनावश्यक - वायु, कफ, पित्त आदि शरीर से बाहर हो जाते हैं।
- नाड़ी-समूह की मृदुता में वृद्धि होती है।
- शरीर का भारीपन दूर होकर हल्कापन एवं स्फूर्ति महसूस होती है।
- आसन करने से सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्व बाधा नहीं देते। शरीर की सहनशीलता बढ़ जाती है।
- श्वसन-क्रिया ठीक और नियमित हो जाती है।
- एकाग्रता बढ़ जाती है, जिससे चित्त को स्थिर करने में मदद मिलती है।
- प्राण-तत्त्व का उद्ऊर्ध्वगमन (ऊँचाई की ओर जाना) सिद्ध होता है। इससे शरीर निरोगी और तेजस्वी हो जाता है।
- आसन सिद्ध हो जाने पर आगे की योग-क्रियाओं - प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि के लिये पात्रता (क्षमता) प्राप्त हो जाती है।

स्वास्थ्य-रक्षण हेतु योगाभ्यास –

- **वृक्षासन**

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय वै।

तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः॥

बायीं जङ्घा के मूल में दायाँ पैर रखें एवं वृक्ष के समान समवेत खड़े हो जायें। इसे वृक्षासन कहते हैं। - घेरण्डसंहिता - 2.36

वृक्षासन

यह सन्तुलन विकासक आभ्यास है। इस आसन में अन्तिम स्थिति वृक्ष के समान प्रतीत होती है, अतः इसे वृक्षासन कहा जाता है ।

वृक्षासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें –

1. दोनों पैरों को मिलाकर खड़े हों जाएँ तथा दोनों भुजाएँ सीधी रखकर सामने की ओर देखें। दाहिनी पैर को घुटने से मोड़ें । दाहिने पैर का पंजा जितना ऊँचा सम्भव हो सके बाँयीं जङ्घा के अन्दर की ओर रखें ।

2. बाएँ पैर को भूमि जङ्घा पर सन्तुलित रखें। दोनों हाथों को सिर के ऊपर उठाते हुए हथेलियों को एक दूसरे से मिलायें। इस स्थिति में 10-15 सेकण्ड बने रहें।
3. पुनः दोनों भुजाओं को नीचे ले आएँ एवं सीधे खड़े हो जाएँ।
4. इसी प्रक्रिया को बाएँ पैर के साथ दोहराएँ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	किसी एक बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करें एवं शरीर को सन्तुलित रखने का प्रयास करें।	1.	आसन के दौरान हिलें-डुलें नहीं।

लाभ -

- वृक्षासन के अभ्यास से शरीर में स्थिरता एवं सन्तुलन विकसित होता है।
- यह आसन विद्यार्थियों में एकाग्रता विकसित करने में सहायक है।
- यह रक्त-परिसञ्चरण को सुधारकर पैरों की माँसपेशियों को सुदृढ़ बनाता है।

सीमाएँ -

- जिन्हें चक्कर आने की समस्या हो, वे इस आसन को नहीं करें।

➢ **ताड़ासन**

संस्कत शब्द 'ताड़' का अर्थ ताड़ के वृक्ष से है। इस आसन की अन्तिम स्थिति में शरीर ताड़ के वृक्ष के समान प्रतीत होता है। अतः ताड़ासन कहा गया है।

ताड़ासन

ताड़ासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. दोंनों पैरों को भूमि पर कन्धे की सीध में रखे, तत्पश्चात् भुजाओं को सिर के ऊपर लाते हुए दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर मिलाएँ। श्वास लेते हुए हथेलियों को ऊपर की ओर यथासम्भव तानने का प्रयास करें।
2. पंजों के बल खड़े हो जाएँ एवं यथासम्भव धीरे-धीरे एड़ियों को ऊपर की ओर उठा लें। शरीर को जितना सम्भव हो सके, ऊपर की ओर खींचें।
3. सामने किसी एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करते हुए 10 से 15 सेकण्ड इस स्थिति में बने रहें ।
4. पुनः लौटने के लिए पैरों के पंजों एवम् एड़ियों को भूमि पर जमा लें। अब धीरे से दोनों हाथों को नीचे ले आयें एवं विश्राम करें ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	भुजाओं और उँगलियों को ऊपर की ओर एवं सिर, गर्दन और शरीर को एक सीध में रखें ।	1.	हिले डुले नहीं एवम् आगे या पीछे नहीं झुकें ।

लाभ -

- यह बढ़ते बच्चों की लम्बाई को बढ़ाने में सहायक है ।
- यह अभ्यास जङ्घा, घुटनों एवं टखनों की माँसपेशियों को बलशाली बनाता है तथा पूरे शरीर को लचीला एवं सुदृढ़ बनाता है ।
- यह आलस्य और थकान दूर करने में सहायक है तथा रक्त-सञ्चरण को सुव्यवस्थित करता है ।
- यह आसन वसा की मात्रा को कम करने में सहायक है।

सीमाएँ -

- घुटनों एवं टखनों के जोड़ों में पीड़ा या अकड़न हो, तो यह आसन न करें ।
- चक्कर आने की स्थिति में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए ।

प्रकारान्तर : तिर्यक ताड़ासन

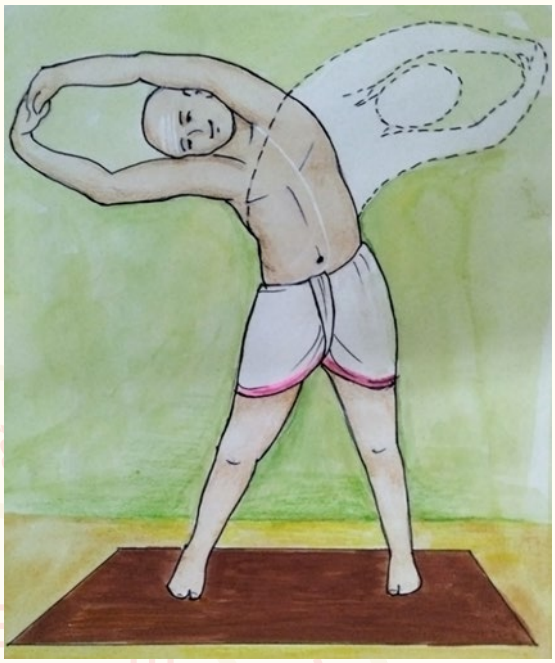

1. दोंनों पैरों को भूमि पर कन्धे की सीध में रखे, तत्पश्चात् भुजाओं को सिर के ऊपर लाते हुए दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर मिलाएँ। श्वास लेते हुए हथेलियों को ऊपर की ओर यथासम्भव तानने का प्रयास करें।
2. श्वास छोड़ते हुए शरीर को यथासम्भव दाएँ ओर झुकाएँ तथा 10 से 15 सेकण्ड इस स्थिति में बने रहें।
3. पुनः श्वास लेते हुए धीरे-धीरे मध्य स्थिति में लौटें। अब श्वास छोड़ते हुए शरीर को यथासम्भव बाएँ ओर झुकाएँ तथा 10 से 15 सेकण्ड इस स्थिति में बने रहें।
4. अब धीरे-धीरे पुनः मध्य स्थिति में लौटकर दोनों हाथों को नीचे ले आयें एवं विश्राम करें।

➢ **कटिचक्रासन**

कटि का अर्थ है 'कमर' एवं चक्र का अर्थ है 'पहिया'। इस आसन में कमर और भुजा एक पहिए के समान गतिशील प्रतीत होते हैं । अतः इसे कटिचक्रासन कहते है ।

कटिचक्रासन

कटिचक्रासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. दोनों पैरों के बीच कन्धों के समानान्तर दूरी रखते हुए सीधे खड़े हो जाएँ।
2. अब अपनी भुजाओं को कन्धों के स्तर तक ऊपर उठाएँ और छाती के सामने लाते हुए दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सामने रखें।
3. श्वास लेते हुए धीरे-धीरे यथासम्भव अपनी कमर एवं हाथों को दायीं ओर पीछे की तरफ घुमाएँ। 5 से 10 सेकण्ड तक इसी स्थिति में बने रहें।
4. पुनः लौटने के लिए श्वास छोड़ते हुए भुजाओं को सामने की ओर ले आएँ।
5. इसी प्रकार यह अभ्यास बाईं ओर से भी करें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	पीछे की ओर घूमते समय श्वास लें एवं पुनः लौटते समय श्वास छोड़ें।	1.	पीछे की ओर घूमते समय शीघ्रता न करें एवं शरीर को झटका न देवें।

लाभ -

- यह मेरुदण्ड को लचीला बनाता है एवं कटि-प्रदेश के वसा को कम करता है।
- यह कन्धों, गर्दन, भुजाओं, उदर तथा जङ्घाओं की माँसपेशियों को सुदृढ़ एवं स्वस्थ बनाता है।

सीमाएँ - मेरुदण्ड की समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति इस आसन को न करें।

➢ **त्रिकोणासन**

इस आसन की अन्तिम स्थिति में शरीर एक त्रिकोण की आकृति के समान प्रतीत होता है, अतः यह त्रिकोणासन कहलाता है।

त्रिकोणासन

त्रिकोणासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. अपने पैरों को 1 से 2 फीट की दूरी पर रखते हुए, दोनों भुजाओं को फैलाएँ और उन्हें कन्धों के समानान्तर तक ऊपर उठाएँ।
2. बाईं ओर कमर से झुकें तथा यथासम्भव बायाँ हाथ बाँयें पैर के पंजे पर रखें।
3. दाँयी भुजा को ऊपर आकाश की ओर ले जाएँ तथा हाथ को सीधा रखें। इस स्थिति में सामान्य श्वसन के साथ पाँच से 10 सेकण्ड तक बने रहें।
4. पुनः लौटने के लिए श्वास लेते हुए बायीं हथेली उठाएँ, शरीर सीधा करें और भुजाओं को कन्धों के समानान्तर ले आएँ।
5. भुजाएँ नीचे करके और हाथों को जङ्घाओं के समीप लाकर, पैरों को एक साथ मिला लें।
6. अब यही अभ्यास दाहिनीं ओर से भी दोहराएँ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	यथासम्भव ही झुकें एवम् अन्तिम स्थिति में सामान्य श्वसन के साथ स्थिर रहें।	1.	आसन करते समय आगे अथवा पीछे न झुकें।
		2.	क्षमता से अधिक न झुकें।

लाभ -

- यह आसन मेरुदण्ड को लचीला बनाता है एवं बढ़ते बच्चों की लम्बाई की वृद्धि में सहायक होता है।
- उदर एवं कटिप्रदेश में जमा अधिक वसा को खत्म करता है ।
- यह गर्दन के दर्द को दूर करने में सहायक है ।

सीमाएँ -

- अधिक पीठ दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए ।

➢ **पद्मासन**

वामोरुपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा

दक्षोरुपरि, पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।

अङ्गुष्ठौ, हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्

एतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते॥

वाम जङ्घा पर दाहिना पैर तथा दाहिनी जङ्घा पर बायाँ पैर स्थापित कर, दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर दाहिने हाथ से दायें अङ्गुष्ठ को तथा बाँये हाथ से बाँये अङ्गुष्ठ को दृढता से पकड़कर पश्चात् कण्ठकूप पर हनु (ठुड्डी) को लगाकर नासाग्रदृष्टि रखने से पद्मासन होता है। योगियों के द्वारा निर्दिष्ट यह पद्मासन सभी रोगों को नष्ट करने वाला होता है। *- हठयोगप्रदीपिका – 1.44*

इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ।

दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते भुवि॥

सभी प्रकार की व्याधियों को नष्ट करने वाला यह पद्मासन कहलाता है। यह सभी के लिए सुलभ नहीं है। संसार के कुछ बुद्धिमान् मनुष्यों द्वारा ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।

- हठयोगप्रदीपिका – 1.47

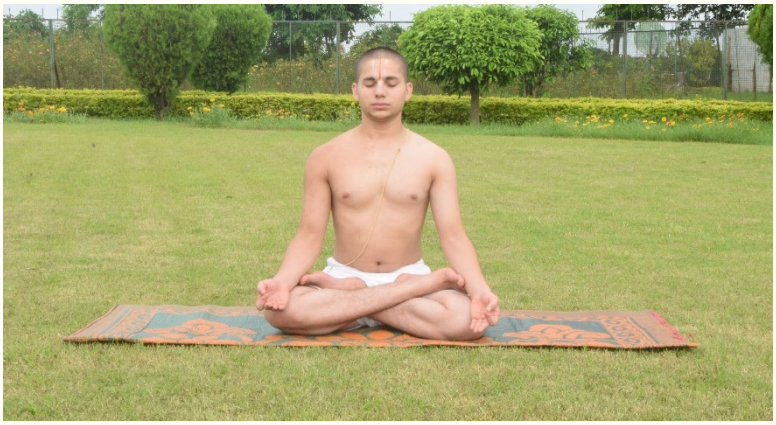

पद्मासन

पद्म का अर्थ 'कमल' होता है। इस आसन की अन्तिम-अवस्था में बैठने की मुद्रा पद्म के समान प्रतीत होती है। अतः यह पद्मासन कहा गया है ।

पद्मासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठ जाएँ एवं मेरुदण्ड को सीधा रखें।
2. अब दाएँ पैर को घुटने से मोड़कर दायीं पैर की एड़ी को, बाएँ पैर की जङ्घा पर रख देवें।
3. इसी प्रकार बाएँ पैर के भी घुटने को मोड़ें एवं बायीं पैर की एड़ी को दाएँ पैर की जङ्घा पर रख देवें।
4. दोनों पैरों की एड़ियों को इस प्रकार रखें कि एड़ियाँ नाभि के आस-पास जमी हुई रहें। अब सामान्य श्वास-प्रश्वास लेते हुए भ्रूमध्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करें ।
5. पुनः लौटने के लिए दोनों नेत्रों को खोलते हुए, दोनों पैरों की लगी हुई पालथी को भी खोल लेवें ।

करने योग्य		**न करने योग्य**	
1.	मेरुदण्ड को सीधा रखें एवं श्वास-प्रश्वास पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।	1.	नेत्रों को न खोलें एवं भुजाओं को तानकर न रखें ।

लाभ -

- यह पाचन-शक्ति को स्वस्थ करता है तथा पैरों की माँसपेशियों में लचीलेपन का विकास करता है।

- यह आसन एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति का विकास करता है एवं शान्ति प्रदान करता है।
- यह आसन ध्यानात्मक आसनों के प्रकारों में से एक माना जाता है।

सीमाएँ - घुटनों की चोट अथवा पीड़ा एवं साइटिका के रोग में यह आसन नहीं करना चाहिए।

प्रकारान्तर : योगमुद्रासन

योग-मुद्रासन पद्मासन समूह से ही सम्बन्धित आसन है ।

योगमुद्रासन

योगमुद्रासन का अभ्यास निम्नलिखित निर्देशों का पालन करते हुए करें –

1. पद्मासन में बैठकर दोनों भुजाओं को पीछे की ओर ले जाएँ एवं बायीं कलाई को दाएँ हाथ से पकड़ लें। अब श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे आगे की ओर झुकें और मस्तक को यथासम्भव भूमि पर लगा देवें। इस स्थिति में 5 से 10 सेकण्ड तक बने रहें।
2. पुनः श्वास लेते हुए शरीर को ऊपर उठाएँ तथा हाथों को आगे लाते हुए प्रारम्भिक स्थिति में आ जाएँ ।
3. इस अभ्यास में दाएँ एवं बाएँ घुटनों पर भी अपने मस्तक अथवा ठोड़ी को लगाया जा सकता है ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	यथासम्भव ही आगे की ओर झुकें ।	1.	अभ्यास के समय शीघ्रता न करें एवं शरीर को झटका ना देवें ।

लाभ -

- यह अभ्यास एकाग्रता बढ़ाने में सहायक होता है एवं तनाव को कम करता है।
- यह आसन स्नायुओं, तन्त्रिकाओं एवं मेरुदण्ड को स्वस्थ तथा लचीला बनाता है।
- शरीर एवं मन में शान्ति तथा सामञ्जस्य विकसित करता है।
- यह उदर अंगों को स्वस्थ्य बनाकर पाचन की समस्याओं में लाभ पहुँचाता है।

सीमाएँ -

- उच्च रक्तचाप, हृदय रोग से ग्रसित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

➢ **वज्रासन**

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ।

वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम्॥

दोनों जङ्घाओं को वज्र की भाँति दृढ करके दोनों पैरों को गुदा के दोनों ओर लगायें, तब यह वज्रासन होता है। यह आसन योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाला है।

- घेरण्डसंहिता - 2.13

वज्रासन

यह एक ध्यानात्मक आसन है तथा एकमात्र ऐसा आसन है, जिसका अभ्यास भोजन करने के पश्चात् भी किया जा सकता है ।

वज्रासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें —

1. पैरों को सामने की ओर सीधे फैलाकर बैठ जाएँ, हाथ शरीर के समीप लगाकर भूमि पर रखें। अब घुटनों से बायें पैर को मोड़ें और पैर को बाएँ पैर को बाएँ नितम्ब के नीचे रख लेवें।
2. इसी प्रकार दाहिना पैर मोड़ते हुए पैर को दाहिने नितम्ब के नीचे रखें ।
3. दोनों एड़ियों को इस प्रकार रखें कि पैर के पंजे परस्पर मिल जाएँ। अब एड़ियों के मध्य नितम्ब को स्थित कर दें ।
4. हाथों को सामने की ओर घुटनों पर रखें। मेरुदण्ड को सीधा रखें एवं सामने दृष्टि रखते हुए एक बिन्दु पर अपना ध्यान बनाकर रखें या नेत्रों को बन्द कर लेवें ।
5. पुनः लौटने के लिए, धीरे-धीरे दायीं ओर झुकते हुए अपने बायें पैर को सामने की ओर फैला लें ।
6. इसी प्रकार दायें पैर भी सामने की ओर लाते हुए प्रारम्भिक स्थिति में आ जाएँ ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	एड़ियाँ बाहर की ओर रहें एवं नितम्ब ऐड़ियों पर स्थापित रहें।	1.	अभ्यास के समय अन्य विषयों में ध्यान न भटके।
2.	आसन की स्थिति में मेरुदण्ड सीधा रहना चाहिए।	2.	आगे-पीछे न झुकें।

लाभ -

- यह पाचन-तन्त्र में सुधार हेतु अति लाभदायक आसन है।
- यह ध्यानात्मक आसन है अतः एकाग्रता विकसित करने में सहायता करता है ।
- यह उदरीय एवं श्रोणी क्षेत्र की माँसपेशियों के साथ ही शरीर के निचले अङ्गों जैसे जङ्घाओं और पैर की पिण्डलियों को सुदृढ बनाता है।

- यह अभ्यास हर्निया की समस्या हेतु प्रतिरोधक है तथा हाईड्रोसिल के रोग में लाभदायक है।

सीमाएँ -

- घुटनों की पीड़ा, अधिक शारीरिक भार की स्थिति में वज्रासन का अभ्यास सावधानीपूर्वक करें।

प्रकारान्तर 1 : सिंहासन

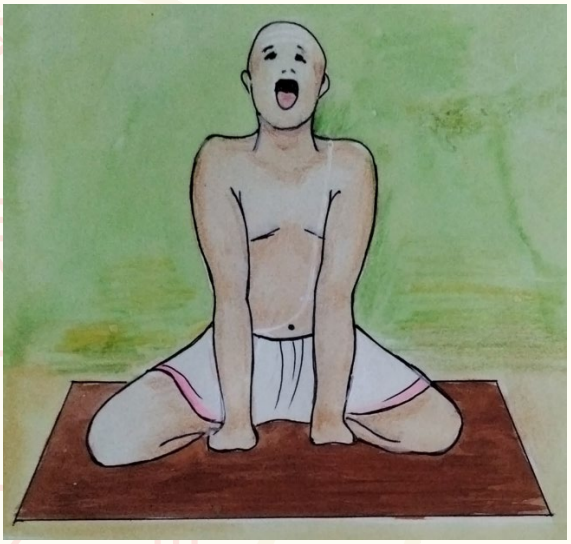

1. सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जायें। दोनों घुटनों को फैलाकर तथा पैर के पञ्जों को मिलाकर रखें।
2. नितम्बों को दोनों एड़ियों के ऊपर रखें।
3. अब आगे की ओर झुकते हुए हथेलियों को घुटनों के बीच में भूमि पर रखें।
4. मुँह खोलें एवं यथासम्भव जीभ को बाहर निकालें तथा भ्रूमध्य में देखें। इस स्थिति में 10 सेकण्ड तक बने रहें।
5. पुनः लौटने के लिये अपनी आँखों को सामान्य अवस्था में लेकर आएँ, हथेलियों को घुटनों पर रखकर वज्रासन में बैठ जाएँ।

प्रकारान्तर 2 : मार्जारी आसन

1. सर्वप्रथम वज्रासन में बैठें, अब घुटनों के बल खड़े होते हुए दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर समुचित रूप से जमाकर रखें। ध्यान रहे कि दोनों हाथों की अंगुलियाँ सामने की ओर मिली हुई हो।

2. श्वास लेते हुए धीरे-धीरे गर्दन एवं कमर के भाग को ऊपर की ओर उठाएँ, वक्षःस्थल तथा नाभि को नीचे की ओर इस प्रकार दबाएँ कि मेरुदण्ड द्वारा नीचे की ओर कमान के समान अकृति का निर्माण हो।

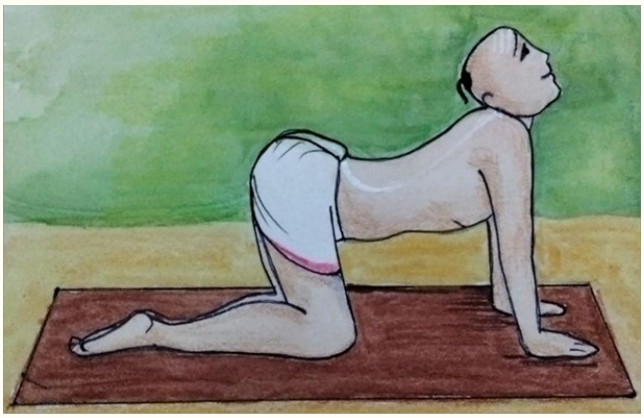

3. अब धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए गर्दन को नीचे की ओर झुकाते हुए हनु (ठोड़ी) को वक्षःस्थल पर लगाएँ। इसी प्रकार कमर के भाग को नीचे की ओर झुकाते हुए मेरुदण्ड द्वारा ऊपर की ओर धनुषाकार उभारें।

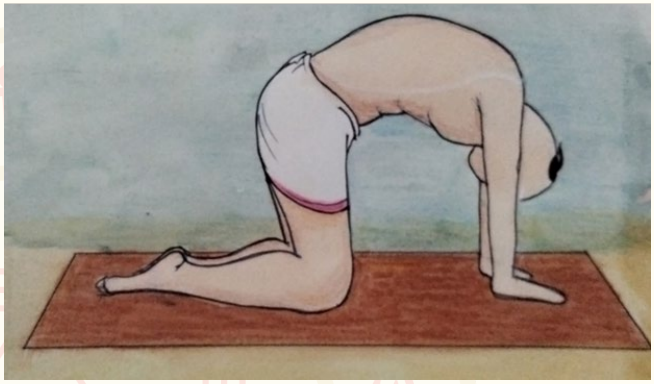

प्रकारान्तर : 3व्याघ्रासन

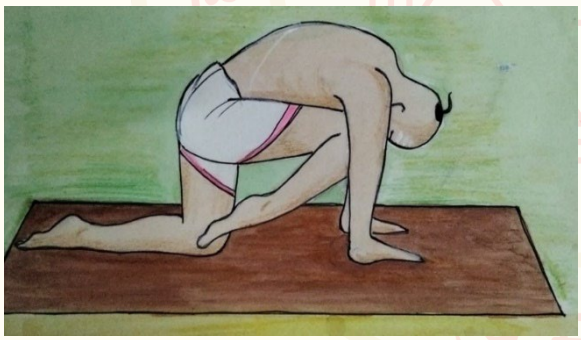

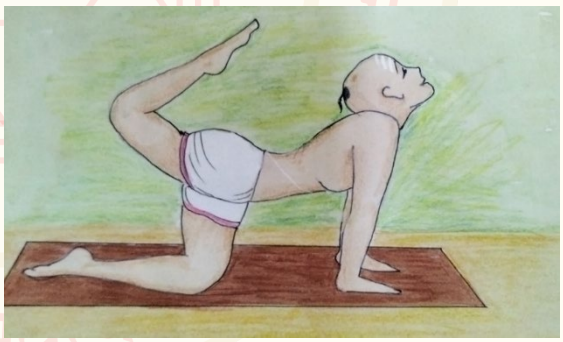

1. सर्वप्रथम वज्रासन में बैठें, अब घुटनों के बल खड़े होते हुए दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर समुचित रूप से जमाकर रखें। ध्यान रहे कि दोनों हाथों की अंगुलियाँ सामने की ओर मिली हुई हो।
2. अब धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए दाएँ पैर के घुटने को मस्तक पर लगाने का प्रयास करें।
3. श्वास छोड़ते हुए गर्दन को ऊपर की ओर उठाएँ एवं दाएँ घुटने को लम्बवत् सीधा करें। इस अभ्यास को 5-10 बार दोहराएँ।
4. इसी प्रकार उपर्युक्त अभ्यास को बाएँ ओर से भी करें।

प्रकारान्तर : 4 – मण्डुकासन

1. सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जायें। अँङ्गूठों को अन्दर की ओर रखते हुए मुट्ठी बनायें एवम् उन्हें नाभि के आस-पास जमाकर रखें।
2. धीरे-धीरे श्वास छोडते हुए, आगे की ओर झुकें एवं वक्षःस्थल को जङ्घाओं से टिका देवें।
3. सिर एवं गर्दन को उठाकर रखें एवं किसी बिन्दु पर एकाग्र रहें, इसी अवस्था में 10 से 15 सेकण्ड बने रहें।
4. पुनः लौटने के लिए शरीर को उठाते हुए नाभिक्षेत्र से अपनी दोनों मुट्ठियों को हटाएँ एवं वज्रासन में लौट आएँ।

प्रकारन्तर 5 : उत्तानमण्डुकासन

1. वज्रासन की स्थिति में बैठकर दोनों घुटनों को यथासम्भव दाएँ तथा बाएँ ओर क्रमशः प्रसारित करें एवं पैरों के पंजों के अंगुठों तथा अंगुलियों को परस्पर मिलाकर रखें।
2. दाएँ हाथ को ऊपर की ओर उठाएँ, दाएँ हाथ की कोहनी मोडें एवं हाथ की हथेली को पीछे की ओर बाएँ कन्धे के नीचे रखें।

3. इसी प्रकार बाएँ हाथ को ऊपर की ओर उठाएँ, बाएँ हाथ की कोहनी मोड़ें एवं हाथ की हथेली को पीछे की ओर दाएँ कन्धे के नीचे रखें।

4. 15-20 सेकण्ड इसी स्थिति में बने रहें।

प्रकारान्तर 6: सुप्त वज्रासन

सर्वप्रथम वज्रासन की स्थिति में बैठें। तत्पश्चात् दोनों हाथों की कुहनियों के सहारे पीछे की ओर झुकते हुए सिर के ऊपरी भाग को भूमि से स्पर्श रखें एवं पीठ को थोडा ऊपर की ओर कमान की आकृति में यथाशक्ति मोड़कर रखें। 15-20 सेकण्ड इसी स्थिति में बने रहें।

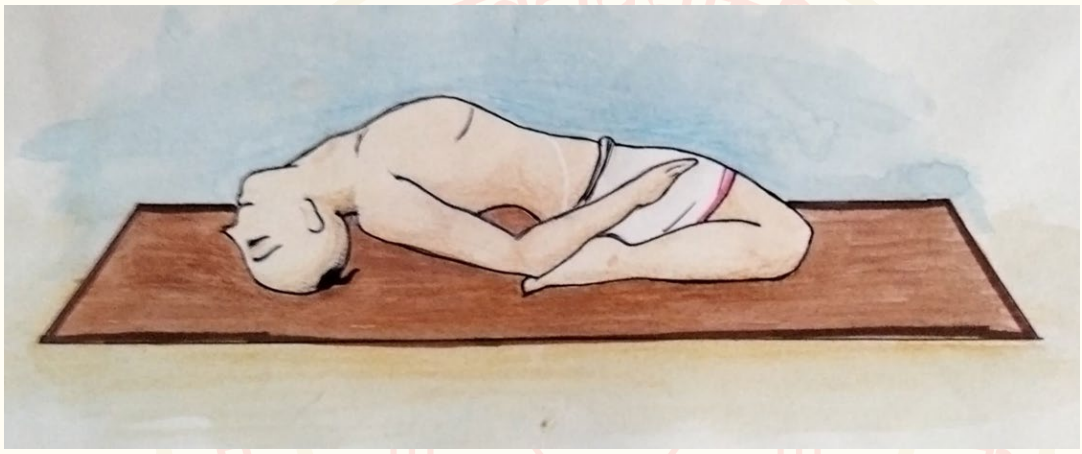

➢ **पवनमुक्तासन**

यह आसन उदर एवम् आँतों के मार्ग में अवरुद्ध पाचक गैसों एवं वायु-दोष का निवारण करता है, अतः इसे पवनमुक्तासन कहते हैं ।

पवनमुक्तासन

पवनमुक्तासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. पीठ के बल लेट जाएँ। पैरों को परस्पर मिलाते हुए हाथों को शरीर के समीप रखें।
2. श्वास लेते हुए दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर उदर (पेट) तक ले आएँ एवं घुटनों को भुजाओं से जकड़कर उदर क्षेत्र को दबाएँ।
3. श्वास छोड़ते हुए मस्तक ऊपर उठाकर ठोड़ी को घुटनों के समीप लाएँ।
4. पुनः लौटने के लिए सिर को सावधानीपूर्वक नीचे लाएँ एवं भुजाओं को खोलते हुए उन्हें भूमि पर रख लें।
5. श्वास छोड़ते हुए पैरों को सीधा करें एवं हाथों को शरीर के समीप रखकर विश्राम करें ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	घुटनों को वक्षःस्थल की ओर स्थापित करते समय घुटने मिले हुए होने चाहिए।	1.	शरीर को आसन के अभ्यास के दौरान हिलाएँ-डुलाएँ नहीं।

लाभ -

- पेट (उदर) में व्याप्त वायु-विकार को शान्त करता है तथा अतिरिक्त वसा को कम करने में सहायता करता है ।
- यह आसन जठराग्नि को प्रदीप्त कर कब्ज के रोग का नाश करता है ।
- शरीर एवं मन को शान्त करता है तथा तनाव प्रबन्ध में लाभदायक आसन है।
- यह अभ्यास मेरुदण्ड की कशेरुकाओं को स्वस्थ एवं लचीला बनाता है।

सीमाएँ -

- सर्वाइकल के रोग से ग्रसित रोगियों को इस आसन में सिर को नहीं मोड़ें।
- अत्यधिक पीठ दर्द या पेट में दर्द हो, तो इस आसन का अभ्यास न करें ।

➢ सेतुबन्धासन

इस आसन की अन्तिम अवस्था में शरीर की स्थिति सेतु के समान दिखाई देती है, अतः इसे सेतुबन्ध आसन कहा गया है। इसे चतुष्पादासन के नाम से भी जाना जाता है।

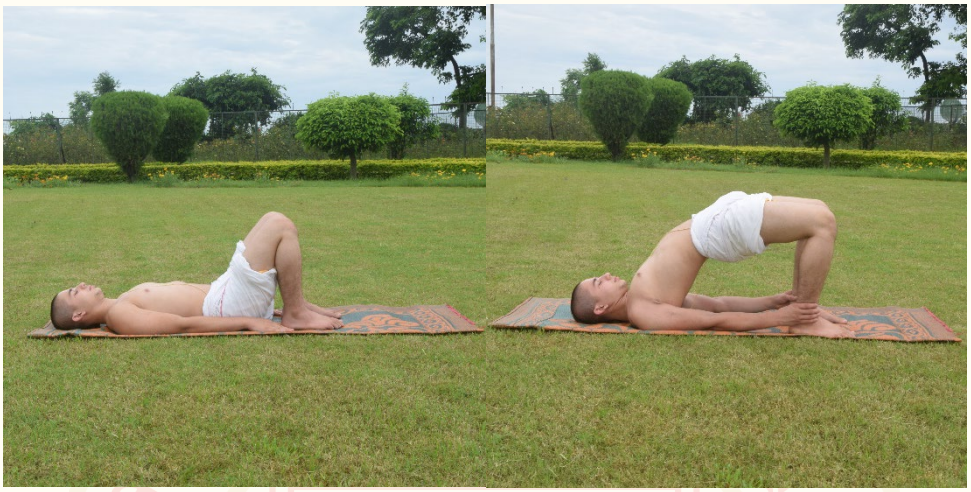

सेतुबन्धासन

सेतुबन्धासन का अभ्यास निम्नलिखित निर्देशों का पालन करते हुए करें –

1. सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाएँ । सिर, धड़ एवं पैरों के दोनों पंजे एक सीध में होंगे। दोनों हाथ शरीर से चिपके हुए तथा हथेलियाँ जङ्घा के समीप रहेंगी।
2. अब धीरे-धीरे श्वास लेते हुए दोनों पैरों के घुटने को मोड़ें तथा पैरों के टखनों को दोनों हाथों से पकड़ लेवें।
3. नितम्ब, मेरुदण्ड और कमर को यथासम्भव ऊपर उठाने का प्रयास करें। इस अवस्था में 10 से 15 सेकण्ड तक बने रहें ।
4. पुनः लौटने के लिए धीरे-धीरे अपनी श्वास को छोड़ें एवम् अपने नितम्बों तथा कमर को जमीन पर रख देवें। दोनों पैरों को लम्बा करके शवासन का अभ्यास करें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	प्रारम्भ में यथासम्भव कमर को उठाएँ।	1.	झटके से ऊपर की ओर कमर को ना उठाएँ ।

2.	शरीर का भार कन्धों पर सन्तुलित रखें एवं गर्दन तथा कन्धों को भूमि पर जमाकर रखें।		

लाभ -

- पाचन-क्रिया को स्वस्थ बनाकर कब्ज से मुक्ति दिलाता है तथा उदर-अङ्गों को सुडौल बनाता है।
- चिन्ता एवम् अवसाद से मुक्ति दिलाता है एवं शरीर तथा मन के मध्य समन्वय को बढ़ाता है।
- एकाग्रता एवं तनाव-प्रबन्धन में लाभदायक आसन है।
- शरीर के पृष्ठ भाग एवं उदरीय मांसपेशियों को सुदृढ बनाता है।

सीमाएँ -

- हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, अधिक मोटापे, अल्सर, हर्निया से ग्रसित लोगों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

➢ **उत्तानपादासन**

संस्कृत शब्द उत्तान का अर्थ है- 'ऊपर की ओर उठा हुआ' एवं पाद का अर्थ 'पैर' होता है। इस आसन में पैरों को ऊपर उठाते हैं । अतः इसे उत्तानपादासन के नाम से जाना जाता है ।

उत्तानपादासन

उत्तानपादासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. पीठ के बल लेट जाएँ, पैरों को मिलाकर हाथों को शरीर के समीप रखें। हथेलियाँ भूमि पर टिकी हुई होंगी।

2. श्वास लेते हुए धीरे-धीरे अपने पैरों को क्रमशः 30°, 45°, और 60° के कोण तक उठायें। इस स्थिति में 5 से 10 सेकण्ड बने रहें।

3. पुनः श्वास छोड़ते हुए दोनों पैरों को क्रमशः 45° एवं 30° के कोण पर धीरे-धीरे लेकर आएँ, तत्पश्चात दोनों पैरों को भूमि पर रख देवें ।

टिप्पणी- *उत्तानपदासन का अभ्यास दो प्रकार से किया जाता है। केवल एक पैर से अभ्यास करने पर 'एकपाद-उत्तानासन' एवं दोनों पैरों से अभ्यास करने पर 'द्विपाद-उत्तानासन' का अभ्यास कहा जाता है।*

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	पैर, धड़ एवं सिर को भूमि पर सीधा रखें तथा भुजाओं, पैरों एवं कन्धों को शिथिल रखें।	1.	दोनों पैरों को झटके से न उठाएँ।
2.	इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए।	2.	पैरों को उठाते समय घुटनों को न मोड़ें।

लाभ -

- यह पेट की माँसपेशियों को सुदृढ़ एवं नाभि-प्रदेश को सन्तुलित करता है।
- यह आसन स्नायु की दुर्बलता, मधुमेह, अपच आदि में लाभकारी है ।

सीमाएँ -

- पीठ से सम्बन्धित बीमारियों में इस आसन का अभ्यास दोनों पैरों से उठाकर न करें।

➢ **भुजङ्गासन**

अङ्गुष्ठनाभिपर्यन्तमधोभूमौ च विन्यसेत्।

धरां करतलाभ्यां धृत्वोर्ध्वशीर्षं फणीव हि॥

देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।

जागर्ति भुजङ्गीदेवी भुजङ्गासनसाधनात् ॥

पैरों के अँङ्गुष्ठों से नाभिपर्यन्त शरीर को भूमि पर स्थिर रखें और हथेलियों को भी भूमि पर टिकाकर सिर को सर्प की भाँति ऊँचा उठा लेवें। यह भुजङ्गासन कहलाता है। यह आसन जठराग्नि को बढ़ाने वाला और सभी रोगों का नाशक है। इसकी साधना से कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है।

- घेरण्डसंहिता - 2.42 - 43

संस्कृत-भाषा में शब्द 'भुजङ्ग' का अर्थ 'सर्प' होता है। इस आसन की अन्तिम-अवस्था में शरीर की स्थिति सर्प के समान प्रतीत होती है, अतः इसे भुजङ्गासन के नाम से जाना जाता है।

भुजङ्गासन

भुजङ्गासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें –

1. पेट के बल लेट जाएँ एवं मस्तक को भूमि पर स्पर्श कराएँ, पैरों को मिलाकर रखें।
2. दोनों हाथों को मोड़कर हथेलियों को कन्धों के समीप भूमि पर रखें तथा कोहनियों को शरीर से चिपकाकर रखें ।
3. धीरे-धीरे श्वास लेते हुए सिर, गर्दन एवं कन्धों को ऊपर की ओर उठाएँ। कन्धों को पीछे की ओर फैलाकर रखें।
4. धड़ को नाभि तक उठाएँ और ठोड़ी को यथासम्भव ऊपर की ओर उठाते हुए आकाश की ओर देखें। इस अवस्था में 10 से 15 सेकण्ड बने रहें।
5. पुनः लौटने के लिए नाभि, वक्षःस्थल, कन्धे, गर्दन एवं मस्तक को धीरे-धीरे नीचे की ओर लायें।
6. मस्तक को भूमि पर टिकाकर हाथों को खोलते हुए जङ्घाओं के समीप रख लें एवं विश्राम करें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	ऊपर की ओर उठते हुए श्वास लेवें।	1.	शरीर को झटका देते हुए न उठाए।

लाभ -

- यह आसन यकृत (लीवर) और वृक्क (किडनी) के लिए लाभदायक है ।
- भुजङ्गासन अन्तःस्रावी प्रणाली को सुचारु बनाकर एड्रेनल ग्रन्थि (Adrenal gland) एवम् अग्न्याशय (Pancreas) को स्वस्थ करता है। अतः यह तनाव-प्रबन्धन में विशेष लाभदायक होता है।
- यह मेरुदण्ड में रक्तपरिसंचरण को सुव्यवस्थित बनाकर उसे सुदृढ़, स्वस्थ एवं लचीला बनाता है ।
- घेरण्डसंहिता (श्लोक 2.43) के अनुसार यह जठराग्नि को स्वस्थ बनाकर सभी रोगों का नाश करता है तथा कुण्डलिनी-साधना में महत्त्वपूर्ण माना गया है।
- यह थायरॉइड ग्रन्थी की क्रियाशीलता को सुचारु बनाता है।
- पाचन एवं श्वसन रोगों में लाभदायक अभ्यास है।

सीमाएँ -

- हर्निया एवं पेट के रोगों में इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

प्रकारन्तर 1 : तिर्यक भुजङ्गासन

भुजङ्गासन की स्थिति बनाते हुए धीरे-धीरे श्वास लेते हुए दाएँ ओर अपनी गर्दन को मोड़ें एवं दाएँ पैर के पंजे को देखने का प्रयास करें। इसी प्रकार क्रमवार रूप में बाएँ ओर भी अभ्यास करें।

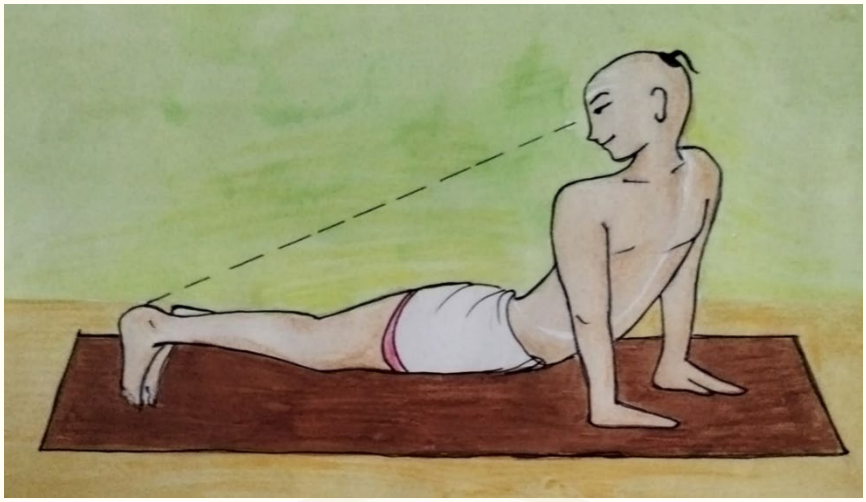

प्रकारान्तर 2 : पूर्ण भुजङ्गासन

भुजङ्गासन की स्थिति बनाते हुए दोनों घुटनों को मोड़ें, तत्पश्चात् दोनों पैरों के तलवों को सिर के पृष्ठ भाग पर धीरे-धीरे स्पर्श कराने का प्रयास करें।

- **शवासन**

उत्तानं शववद्भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्॥

भूमि पर शव की भाँति चित लेट जाना शवासन है। शवासन थकान को मिटाता है और चित्त शान्ति प्रदान करता है। - हठयोगप्रदीपिका - 1.32

यह शिथिलीकरण आसन है। इस आसन में शरीर पूर्ण रूप से शिथील होकर भूमि पर निश्चल दिखाई देता है। अतः इसे शवासन कहा जाता है।

शवासन

शवासन के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें –

1. भूमि पर सीधा लेट जाएँ, हाथों एवं पैरों को एक-दूसरे से दूर रखें। हथेलियाँ आकाश की ओर खुली हुई, हाथों की अँगुलियाँ प्राकृतिक-रूप से मुड़ी हुई तथा नेत्र बन्द रहें।
2. श्वास-प्रश्वास का क्रम धीमा एवं गहरा रखें।
3. पूरे शरीर को शिथिल कर लें एवम् इस अवस्था में थोड़ी देर बने रहें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	अभ्यास के समय नेत्रों को बन्द रखें तथा अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित करें।	1.	अभ्यास के दौरान शरीर के किसी भाग को हिलायें-डुलायें नहीं।
2.	श्वास-प्रश्वास का क्रम धीमा रखें।	2.	मन में चञ्चलता न रहे।

लाभ -

- यह शारीरिक एवं मानसिक-रूप से स्वस्थ करने एवं शान्ति प्रदान करने में अत्यन्त सहायक है।
- इसके अभ्यास के पश्चात् अत्यन्त स्फूर्ति एवम् ऊर्जा अनुभव होती है तथा दोनों स्तरों (शारीरिक एवं मानसिक) में सामञ्जस्य प्रदान करने हेतु विशेष लाभदायक सिद्ध होता है।
- अनिद्रा आदि रोगों का नैदानिक-उपचार शवासन द्वारा सम्भव है।

सीमाएँ -

- अवसाद अथवा रक्तचाप जैसे रोगों में शवासन का अभ्यास न करें।

प्रश्नावली

प्रश्न 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. सूर्यनमस्कार की तृतीय स्थिति का मन्त्र 'ॐ ..... नमः' है। (मित्राय/सूर्याय)
2. कपालभाति को ..... की श्रेणी में रखा गया है। (षट्क्रिया/प्राणायाम)
3. ..... से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। (वज्रासन/वृक्षासन)
4. ..... एक ध्यानात्मक आसन है। (भुजङ्गासन/पद्मासन)
5. योगमुद्रासन का अभ्यास ..... किया जाता है।

प्रश्न 2. सही जोड़ियाँ बनाईए

1.	आसन	वज्रासन
2.	पवनमुक्तासन	बारह सोपान
3.	उड्डयान बन्ध	वायु दोष के निदानार्थ
4.	सूर्यनमस्कार	उदर क्षेत्र
5.	ध्यानात्मक आसन	तृतीय योगाङ्ग

प्रश्न 3. निम्नलिखित वाक्यों में से सत्य/असत्य चुनिएँ -

1. वज्रासन का अभ्यास भोजन के पश्चात् भी किया जा सकता है। (सत्य/असत्य)
2. सूर्यनमस्कार में आठ स्थितियाँ होती हैं। (सत्य/असत्य)
3. सेतुबन्धासन पीठ के दर्द में लाभदायक अभ्यास नहीं होता है। (सत्य/असत्य)
4. शवासन शिथिलीकरण के आसनों की श्रेणी में आता है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. सूर्य नमस्कार की सप्तम स्थिति में निहित मन्त्र लिखिए ?

2. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य के चार पक्ष लिखिए ?

3. एकाग्रतावर्द्धक योगासनों के नाम लिखिए ?

4. आसनों के अभ्यास हेतु पाँच महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश लिखिए ?

5. सूर्यनमस्कार के सभी चरणों के नाम एवं हर स्थिति में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों को लिखिए ?

6. आसन से आप क्या समझते हैं ? आसन से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए ?

परियोजना-कार्य

❖ योगासनों का एक चार्ट बनाएँ, जिसमें आसनों के चित्र लगाएँ एवम् उनसे होने वाले लाभों को लिखें।

इकाई - षष्ठम्

प्राणायाम

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

6.1 प्राणायाम – परिचय एवं परिभाषा

6.2 प्राणायाम का महत्त्व एवम् उपयोगिता

6.3 प्राणायाम के नियम

6.4 प्राणायाम अभ्यास-

- ❖ **अनुलोम-विलोम प्राणायाम**
- ❖ **भ्रामरी प्राणायाम**

6.5 षट्कर्म परिचय

- ❖ **कपालभाति**

6.1 प्राणायाम – परिचय एवं परिभाषा

अष्टाङ्गयोग-साधना में प्राणायाम चतुर्थ स्थान पर निहित है। प्राणायाम 'प्राण' अथवा श्वसन-प्रक्रिया को नियन्त्रित एवं सुव्यवस्थित करने का अभ्यास है, जिससे न केवल शरीर को स्वस्थ किया जा सकता है, बल्कि मन एवम् इन्द्रियों को भी स्वस्थ किया जा सकता है। 'हठयोगप्रदीपिका' के अनुसार -

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

वात (वायु) के चञ्चल होने से चित्त भी चञ्चल हो जाता है तथा वायु के स्थिर होने से चित्त भी स्थिरता को प्राप्त होता है, जिससे योगी सभी प्रकार से स्थिर होता है। अतः प्राणायाम का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

– हठयोगप्रदीपिका 2.2

योगदर्शन के अनुसार प्राणायाम को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है -

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

आसन की सिद्धि के पश्चात् श्वास और प्रश्वास की गति का नियन्त्रण हो जाना ही प्राणायाम कहा गया है।

– योगदर्शन 2.49

प्राणायाम शब्द, दो शब्दों 'प्राण' एवम् 'आयाम' से मिलकर बना है। प्राण से आशय, शरीर में व्याप्त पञ्चप्राण - प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान अथवा प्राणवायु से है। वहीं आयाम का अर्थ नियन्त्रण, नियमन, विस्तार आदि से है। इस प्रकार प्राणायाम का संयुक्त अर्थ बनता है- प्राण अथवा श्वास-प्रश्वास का नियमन, नियन्त्रण एवं विस्तारण करना।

6.2 प्राणायाम का महत्त्व एवम् उपयोगिता -

प्राणायाम श्वास-प्रश्वास का एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी विज्ञान है। इसके द्वारा शरीर के विभिन्न अङ्गों को स्वस्थ व पुष्ट बनाया जा सकता है। शरीर के महत्त्वपूर्ण भागों, जैसे - फेफड़ों, हृदय, मस्तिष्क, शिरा-धमनियों एवं समस्त नाड़ियों में रहने वाली विकृतियों (मलों) का प्राणायाम के द्वारा शोधन किया जा सकता है। प्राणायाम (पूरक, कुम्भक, रेचक) के माध्यम से मस्तिष्क एवं फेफड़ों में पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन पहुँचाकर उन्हें शुद्ध स्वस्थ एवं परिपुष्ट बनाया जा सकता है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की दृष्टि से प्राणायाम बहुत ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण योगाभ्यास है।

6.3 प्राणायाम के नियम -

- प्राणायाम साफ-सुथरे हवादार समतल स्थल पर किया जाना चाहिए। आसन हेतु कम्बल, ऊनी, सूतीवस्त्र, रेशमीवस्त्र, कुशा आदि का उपयोग करना चाहिए।
- प्राणायाम के लिये पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन या सुखासन में बैठना उपयुक्त है। अभ्यास तनावमुक्त होकर, एकाग्रभाव से करना चाहिये। मन शान्त एवं प्रसन्न रखें।

- प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर बिना कुछ आहार किये प्राणायाम करें। शुरू में 10-15 मिनिट के लिये ही अभ्यास करें, परन्तु बाद में धीरे-धीरे इसे बढ़ावें।
- प्राणायाम हठपूर्वक या गलत विधि से नहीं करना चाहिये। योग्य गुरु से शिक्षा लेकर और उनके मार्गदर्शन में ही करना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यास करते समय मेरुदण्ड, गर्दन, कमर, सिर, सदा ही सीधा और सहज-रूप में रखना चाहिये। साथ ही नाक, कान, आँख, मुँह आदि अङ्गों पर किसी प्रकार का तनाव अथवा दबाव न रखकर सहज रूप से रखना चाहिये।
- प्राणायाम साधक को सात्त्विक आहार लेना, युक्तियुक्त विहार करना और सत्कर्मों में चेष्टा करनी चाहिये। अभ्यासी को न अधिक जागरण करने वाला और न अधिक सोकर देरी से उठने वाला होना चाहिये।

6.4 प्राणायाम अभ्यास-

➢ अनुलोम-विलोम प्राणायाम

अनुलोम-विलोम प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है- अनुलोम अर्थात् 'स्वयं की ओर' एवं विलोम अर्थात् 'विपरीत' । इस प्रकार स्पष्ट है कि वह प्राणायाम जिसमें बारी-बारी से दोनों नासिका स्वरों के द्वारा श्वास-प्रश्वास-क्रम का अभ्यास किया जाता है, वही अनुलोम-विलोम प्राणायाम है।

अनुलोम-विलोम

अनुलोम-विलोम के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें -

1. सर्वप्रथम पद्मासन अथवा अन्य किसी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएँ। मेरुदण्ड, गर्दन एवं सिर को सीधा रखें।
2. कुछ समय सामान्य श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करें एवं नेत्रों को बन्द कर लें।
3. अब बायें हाथ की तर्जनी अँगुली को अँगूठे के शीर्ष पर स्पर्श करते हुए ज्ञान-मुद्रा बनाएँ एवम् इसे घुटनों पर सहजतापूर्वक स्थापित करें।
4. दायाँ हाथ ऊपर की ओर उठाते हुए दाएँ नासिका स्वर को अँगूठे से बन्द करें।
5. बाएँ नासिका स्वर से धीरे-धीरे गहरी लम्बी श्वास लीजिये।
6. अब दाएँ नासिका स्वर से अँगूठे को हटाते हुए धीरे-धीरे श्वास छोड़ें एवम् अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियों से बाएँ नासिका-स्वर को बन्द कर लेवें। पुनः दाएँ नासिका-स्वर से ही गहरी श्वास भरें।
7. बाएँ नासिका-स्वर को खोलें एवं श्वास छोड़ते हुए दाएँ नासिका-स्वर को बन्द कर लें।
8. यह अनुलोम-विलोम प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण हुआ। प्रारम्भ में इस अभ्यास की 10 आवृत्ति करें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	श्वासों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।	1.	ज़ोर लगाकर श्वास-प्रश्वास न करें।
2.	अभ्यास को बढ़ाते हुए धीरे-धीरे आवृत्तियों में वृद्धि करें।	2.	मेरुदण्ड को न झुकने दें।
3.	श्वास-प्रश्वास के बीच 1:2 का अनुपात रखें।		

लाभ -

- यह अभ्यास प्राण शक्ति को बढ़ाता है तथा सम्पूर्ण शरीर में ऑक्सीजनयुक्त रक्त- सञ्चरण को सुव्यवस्थित करके सभी अङ्गों को पोषण प्रदान करता है।
- एकाग्रता तथा मानसिक तनाव के उपचार में लाभदायक होता है।

- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से होने वाले हार्मोन्स के स्रावों का नियमन एवं नियन्त्रण करता है तथा सभी शारीरिक-क्रियाओं को स्वस्थ बनाता है।
- तन्त्रिका-तन्त्र एवं स्नायुओं को स्वस्थ बनाता है ।
- यह अभ्यास श्वसन-अङ्गों एवं श्वसन-रोगों के लिए विशेष लाभदायक होता है।

सावधानी -

- रक्तचाप एवं हृदय-रोग से ग्रसित लोगों को कुम्भक क्रिया न करते हुए इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

➢ **भ्रामरी प्राणायाम -**

वेगाद् घोषं पूरकं भृङ्गनादं भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम् ।

योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगात् चित्ते जाता काचिदानन्दलीला ॥

वेग से भ्रमर- गुञ्जन की भाँति ध्वनि करते हुए पूरक करना चाहिये । तत्पश्चात् भ्रमरी के गुञ्जन की भाँति ध्वनि करते हुए शनैः शनैः रेचक करना चाहिये। इस विधिपूर्वक अभ्यास करने से उत्तम साधकों के चित्त में एक अपूर्व आनन्द की उत्पत्ति होती है । - हठयोगप्रदीपिका - 2.68

'भ्रमर' एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ 'भौंरा' होता है । इसके अभ्यास में भ्रमर के समान गुञ्जन जैसी ध्वनि होती है, अतः इसे भ्रामरी-प्राणायाम कहा जाता है ।

भ्रामरी-प्राणायाम

भ्रामरी-प्राणायाम का अभ्यास निम्नलिखित निर्देशों का पालन करते हुए करें –

1. सुखासन में बैठकर लम्बी गहरी श्वास लें एवं नेत्रों को बन्द कर लेवें ।
2. दोनों हाथों के अँगूठे से कर्ण-छिद्रों को बन्द करके, दोनों हाथों की मध्यमा अँगुलियों को नेत्रों पर, दोनों तर्जनी को भौहों पर, दोनों अनामिका नासिका स्वर के पास तथा कनिष्ठा अँगुलियों को होठों के समीप रखें । इसे षण्मुखी-मुद्रा कहते हैं ।
3. अब धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए भ्रमर के समान मधुर गुञ्जन की आवाज निकालें। इस चक्र को 5 से 10 बार दोहराएँ ।
4. पुनः लौटने के लिए हाथों को उक्त स्थानों से हटाते हुए हथेली को घुटनों पर रख दें ।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	मेरुदण्ड एवं गर्दन सीधी रखें ।	1.	जोर से आवाजें न निकालें ।
2.	गुञ्जन की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करें ।	2.	नेत्रों, नासिका स्वरों पर अनावश्यक दबाव न डालें ।
		3.	गुञ्जन के समय दन्त-पङ्क्तियों को न मिलावें ।

लाभ -

- एकाग्रता एवं तनाव-प्रबन्धन में सहायक ।
- मस्तिष्क एवं तन्त्रिका-तन्त्र के स्वास्थ्य हेतु लाभकारी ।
- उच्च रक्तचाप, अनिद्रा के निदान में सहायता करता है ।
- कण्ठस्वर को मधुर बनाता है एवं गले के रोगों में लाभदायक अभ्यास है ।

सीमा -

- नाक व कान के सङ्क्रमण में भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

6.5 षट्क्रिया -

उपनिषदों एवं योग से सम्बन्धित शास्त्रों में हठ-योग के वर्णन के अन्तर्गत षट्कर्म का भी वर्णन किया गया है। षट्-क्रियाओं का उद्देश्य शरीर से विषाक्त पदार्थ को बाहर निकालना है। अतः इन्हें शुद्धिकरण की क्रियाएँ भी कहा जाता है। हठयोग की तरह षट्-क्रियाएँ भी इड़ा (चन्द्रस्वर) एवं पिङ्गला (सूर्यस्वर) नाड़ियों के मध्य सामञ्जस्य एवं मानसिक तथा शारीरिक-स्वास्थ्य हेतु विशेष लाभदायक है। इस अध्याय में हम षट्-क्रियाओं में से एक 'कपालभाति' का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

➢ **कपालभाति**

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससम्भ्रमौ ।

कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥

लुहार की धौंकनी की भाँति शीघ्रता से रेचक-पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ दोषों का शमन करने वाली है।

- हठयोगप्रदीपिका 2.36

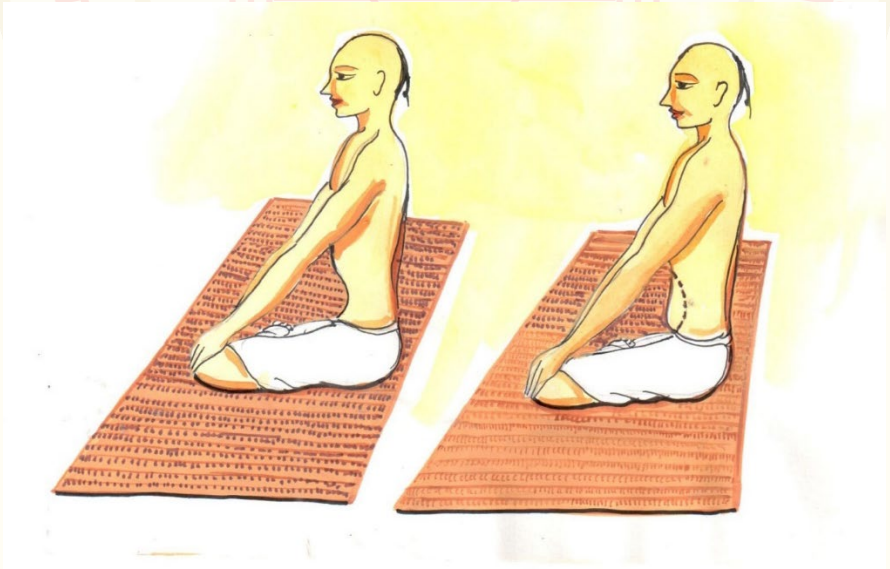

कपालभाति

कपालभाति के अभ्यास हेतु नीचे दिए गए चरणों का अनुसरण करें –

1. सर्वप्रथम पद्मासन अथवा अन्य किसी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएँ ।

2. नासिका से गहरी लम्बी श्वास लें एवं मेरुदण्ड को सीधा रखें ।

3. अब बल पूर्वक श्वास को इस प्रकार बाहर निकालें कि उदर-क्षेत्र का निचला हिस्सा (Pelvic region) पूर्णरूप से सिकुड़ जाए।

4. इसी प्रकार सहज-भाव से श्वास को बाहर छोड़ते रहें। श्वास लेने का प्रयास न करें, वह स्वतः ही शरीर में प्रवेश करेगी। अतः केवल श्वास छोड़ने (रेचन) हेतु चेष्टा करें।

5. इस प्रकार उदर की माँसपेशियों को दबावपूर्वक अन्दर-बाहर करते हुए श्वास छोड़ें। आरम्भ में इस प्रकार से 20 से 25 आवृत्तियों का अभ्यास तीन बार करें। तत्पश्चात् धीरे-धीरे अभ्यास के साथ आवृत्तियों एवं चक्रों की सङ्ख्या को बढ़ावें।

करने योग्य		न करने योग्य	
1.	मेरुदण्ड, गर्दन एवं सिर सीधा रखें ।	1.	श्वास छोड़ते समय नासिका- स्वरों पर अतिरिक्त दबाव न डालें ।
2.	सहजतापूर्वक एवं यथाशक्ति ही अभ्यास करें।	2.	अभ्यास करते समय वक्षःस्थल एवं कन्धों को ना हिलायें।

लाभ -

- यह उदरीय भाग के स्नायुओं तथा मांसपेशियों को स्वस्थ्य बनाता है। साथ ही पाचन प्रक्रिया हेतु लाभदायक अभ्यास है।
- शरीर के विषाक्त पदार्थों का निष्कासन कर कफविकार, जुकाम, साइनोसाइटिस, अस्थमा एवं श्वसन-तन्त्र के रोगों में लाभदायक है ।
- शरीर में व्याप्त कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा अपशिष्ट गैसों को बाहर निकालता है एवं रक्त-सञ्चार को बेहतर बनाता है।

- तन्त्रिका-तन्त्र को मजबूत बनाकर आलस्य को दूर करता है ।स्फूर्ति व एकाग्रता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होता है। सम्पूर्ण शरीर एवं मस्तक पर कान्ति, तेज, ओज में वृद्धि करता है।

सीमाएँ -

- उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, हृदय-रोग, श्वसन-नली एवं पेट का अल्सर, पीठ एवं पेट दर्द, नासिका से रक्त-प्रवाह आदि रोगों में कपालभाति का अभ्यास न करें।

प्रश्नावली

प्रश्न 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. कपालभाति को ..... की श्रेणी में रखा गया है। (षट्क्रिया / प्राणायाम)
2. शीतली-प्राणायाम ..... में करना चाहिए। (शीतऋतु / ग्रीष्मऋतु)
3. भ्रमर गुंजन की भाँति ध्वनि के साथ अभ्यास किए जाने वाला..... प्राणायाम है। (सूर्यभेदन/भ्रामरी)
4. कपालभाति …….. के अन्तर्गत कहा गया है। (षट्क्रिया/प्राणायाम)

प्रश्न 2. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनिएँ –

1. निम्न में से किस प्राणायाम को ग्रीष्म ऋतु में करना उपयुक्त है-

   अ. उज्जायी प्राणायाम　　ब. शीतली प्राणायाम

   स. सूर्यभेदी प्राणायाम　　द. भस्त्रिका प्राणायाम

2. प्राणायाम का सही अर्थ है-

   अ. श्वासों को रोकना　　ब. श्वासों को छोड़ना

   स. श्वासों को रोकना व छोड़ना　　द. श्वासों का नियमन व नियन्त्रण करना

3. प्राणायाम करने से लाभ है –

   अ. फैफड़े स्वस्थ व विकसित होना　　ब. ध्यान लगाने में सहायता मिलना

   स. नाड़ियों में निर्मलता आना　　द. उपरोक्त सभी

4. योगसूत्र के अन्तर्गत प्राणायाम का स्थान है –

   अ. प्रथम　　ब. द्वितीय　　स. तृतीय　　द. चतुर्थ

प्र.5. निम्नलिखित उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. कपालभाति योग के किस अभ्यास में निहित है?

2. प्राणायाम के दो लाभ लिखिए?

3. प्राणायाम के अभ्यास हेतु पाँच महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश लिखिए?

4. W.H.O. के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा को लिखिए?

5. अनुलोम-विलोम तथा भ्रामरी के अभ्यास से होने वाले लाभ लिखिए?

6. प्राणायाम का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए? अनुलोम-विलोम प्राणायाम से होने वाले लाभों को लिखिए ?

7. कपालभाति को समझाते हुए उसके लाभों को लिखिए?

परियोजना-कार्य

- नित्य प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करें, तत्पश्चात् मानसिक एवं शारीरिक-स्तर पर अनुभूत हुए परिवर्तनों का आंकलन कर एक रिपोर्ट तैयार कीजिये ?

इकाई - सप्तम्

आहार एवं पोषण

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

7.1 **परिभाषा**

7.2 **आहार का महत्व**

7.3 **आहार के कार्य** -वृद्धि का कारण, इन्द्रियों का पोषक, शरीरांतर्गत विभिन्न क्रियाओं हेतु महत्वपूर्ण, बल, ऊर्जा एवं आरोग्य का साधन

7.4 **आहार के गुण** - आहार में निहित पञ्चभौतिक गुणों का वर्णन, भगवद्गीता के अनुसार भोजन के गुण एवं प्रकार

7.5 **आहार के प्रकार**- योगमय आहार, सन्तुलित आहार

7.1 परिभाषा -

संस्कृत व्याकरण के अनुसार आहार पुल्लिंग शब्द है, जिसमें 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'हृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'आहार' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। निघण्टु शास्त्र के अनुसार-

अहार्यते गलादधो नीयते इति आहारः (निघण्टु)

अर्थात्- वे भोज्य पदार्थ जो मुख मार्ग के द्वारा गले (कण्ठ) के माध्यम से ग्रहण किए जाते है, उन्हें आहार कहते हैं।

अमर कोश के अन्तर्गत आहार शब्द के विभिन्न पर्यावाची शब्द उल्लेखित है, जैसे- जग्धिः, भोजनं, जेमनं, लेपः, निघषः, न्यादः आदि।

7.2 आहार का महत्व-

आहार हमारे जीवन का आधार है। आहार के द्वारा ही हमारी भौतिक देह का निर्माण हुआ है। अतः कहा भी गया है कि **'देहो हि आहार संभवः'** (सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 46/3)। इसीलिए आहार

को शास्त्रों में 'प्राण' की संज्ञा भी दी गई है। आहार की गणना आयुर्वेद के अन्तर्गत 'त्रय उपस्तम्भ' में से एक के रूप में भी की गई है। **(त्रय उपस्तम्भा शरीरस्येति, आहारः स्वपनो ब्रम्हचर्यमिति।- चरक सूत्र** 11.35)

आहार का महत्व दर्शाते हुए कहा गया है कि -

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ।

आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः॥ (सुश्रुत संहिता)

अर्थात्- सम्यक् (उचित) आहार को ग्रहण करने से शरीर को पुष्टता की प्राप्ति होती है, शीघ्र ही बल की प्राप्ति होती है एवं शरीर की धारण शक्ति में वृद्धि होती है। साथ ही आयु तेज-उत्साह-स्मरणशक्ति-ओज तथा अग्नि को भी वृद्धि प्राप्त होती है।

इसी प्रकार आचार्य कश्यप द्वारा भी कहा गया है कि -

सम्यगुपयुज्यमानो जीवयति (काश्यपसंहिता, खिलस्थान 513)

अर्थात् - सम्यक् आहार जीवन देने वाला होता है।

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं

लोकोऽभिधावति।वर्णः प्रसादःसौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम् ॥

तुष्टि : पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्। लौकिकं कर्म यद् वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम्॥

कर्मापवर्गे यच्चोक्तं तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्। (चरकसंहिता,सूत्रस्थान 27.349-350)

अर्थात् - प्राणियों का प्राणरूप अन्न है। अतः प्राणिलोक की स्वभाविक प्रवृत्ति अन्न की ओर होती है। वर्ण, प्रसन्नता, स्वरों में सौष्ठव, जीवन्तता, प्रतिभा, सुख, तुष्टि (सन्तोष), पुष्टता, बल, मेधा- ये सभी गुण अन्न में प्रतिष्ठित होते है। सामान्य जीवनयापन से सम्बन्धित लौकिक कर्म तथा स्वर्गादि सुखों को देने वाले वैदिक कर्म भी अन्न में ही प्रतिष्ठित है अर्थात् अन्न के बिना कोई भी कार्य सम्भव नहीं है। इस प्रकार अन्न को श्रेष्ठ बताया गया है।

7.3 आहार के कार्य-

आहार के निम्नलिखित प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं-

i. **वृद्धि का कारण** - परिमित मात्रा में आहार को ग्रहण करने से हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका को पोषण प्राप्त होता है। साथ ही भोजन के सम्यग् पाचन द्वारा निर्मित पोषक तत्त्वों से हमारे शरीरस्थ धातुओं का पोषण तथा निर्माण भी समुचित रूप से होता है।

ii. **इन्द्रियों का पोषक** - आहार का कार्य केवल हमारे शरीर की सप्त धातुओं को पोषित करना ही नहीं है, वरन् ग्रहण किए गए भोजन का प्रभाव हमारे मन एवं इन्द्रियों पर भी देखा जा सकता है। अतः मनोकायिक एवं मनोदैहिक स्तर पर भी आहार के महत्वपूर्ण कार्य है। छान्दोग्योपनिषत् के अनुसार- **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'** (अर्थात् - शुद्ध आहार के द्वारा ही मन की शुद्धि हो सकती है)। भगवद्गीता में तामसिक आहार आलस्य एवं अनेक मानसिक व्याधियों का कारक कहा गया है।

iii. **शरीरान्तर्गत विभिन्न क्रियाओं हेतु महत्वपूर्ण** - समुचित आहार को ग्रहण करने पर सम्पूर्ण शरीर एवं उसमें निहित शरीराङ्ग (अवयव) पुष्ट होते हैं, परिणामस्वरूप शरीर में उपस्थित सभी तन्त्र एवं अवयव समुचित रूप से कार्य करते हैं तथा चयापचय (Metabolism) प्रक्रिया को सुव्यवस्थित एवं सुचारु बनाते है। सुश्रुत संहिता के अनुसार -

सम्प्रवक्ष्याम्यतश्चोर्ध्वमाहारगति निश्चयम् ॥ सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 46.532 ॥

उपर्युक्त उल्लेख के अन्तर्गत आहार की गति के निश्चय के विषय में वर्णन प्राप्त होता है, जिसका विमर्श निम्न प्रकार है -

विमर्श-

आहार की गति अथवा ग्रहण किये गए भोजन का चयापचय (metabolism) है। शरीर में उपापचय (Anabolism) तथा अपचय क्रिया (Katabolism) नामक दो कार्य निष्पादित होते रहते हैं। ये दोनों क्रियाएँ साथ-साथ निरन्तर चलायमान रहती हैं। प्रथम क्रिया से सेवित खाद्य द्रव्यों के रस- रक्तादि बन कर शरीर की वृद्धि, क्षतिपूर्ति और रक्षा होती है। द्वितीय क्रिया से शारीरिक धातुओं में CO_2 गैस, जल, अमोनिया यूरिया आदि अनुपयोगी त्याज्य पदार्थ बन कर स्वेद, मूत्र और प्रश्वास, CO_2 बाहर की ओर निष्कासित हो जाते हैं ।

iv. **बल, ऊर्जा एवं आरोग्य का साधन -** भोजन को उचित परिमाण को ग्रहण करने पर वह आयु तथा बल को प्रदान करने वाला होता है। सन्तुलित आहार के द्वारा शरीर एवं मन को ऊर्जा उत्साह की प्राप्ति होती है। साथ ही आहार में निहित पोषक तत्त्व, यथा-प्रोटिन, खनिज, वसा, शर्करा, विटामिन्स आदि के द्वारा शरीर में होने वाली पोषक तत्वों की कमी पूरी होती है। परिणामस्वरूप शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। अतः आहार हमें आरोग्य भी प्रदान करता है।

7.4 आहार के गुण - आहार के गुण को दर्शाते हुए सुश्रुत संहिता में कहा गया है कि-

अ. आहार में निहित पञ्चभौतिक गुणों का वर्णन -

पञ्चभूतात्मके देहे ह्याहारः पञ्चभौतिकः।

विपक्वः पञ्चधा सम्यग्-गुणान् स्वानभिवर्द्धयेत् ॥ (सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 46.533)

अर्थात्- पञ्चभूतों (जल,अग्नि,पृथ्वी,वायु,आकाश) से निर्मित देह के द्वारा पञ्चभौतिक गुणों से युक्त आहार ग्रहण किए जाने पर निर्मित हुए पाचक रस भलीं प्रकार से पक्व (पोषित) होकर अपने-अपने गुणों वाले शारीरिक अङ्गों अथवा धातुओं का पोषण करते है।

ब. भगवद्गीता के अनुसार भोजन के गुण एवं प्रकार -

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

आहाराः राजसस्येष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ *-श्रीमद्भगवद्गीता - 17.8-10*

अर्थात्- आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय हो, वह सात्त्विक पुरुष को प्रिय सात्त्विक (पथ्य) आहार है। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गर्म, तीखे, रूखे, दाहकारक तथा दुःख, चिन्ता एवं रोग उत्पन्न करने वाले आहार

राजस-पुरुष को प्रिय आहार है। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी एवम् उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस-पुरुष को प्रिय तामसिक (अपथ्य) आहार है ।

- *भगवद्गीता में कहा है कि -*

'तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥ *-भगवद्गीता 3.12*

देवताओं द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को जो मनुष्य उन्हें बिना समर्पण किए ही ग्रहण कर लेता है, वह चोर के समान है।

अतः भगवान् को समर्पण करने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से वह भोज्य पदार्थ भगवान का प्रसाद स्वरूप हो जाता है।

7.5 आहार के प्रकार -

7.5.1 योगमय आहार-

योगाभ्यासी के लिए सदा मिताहार का पालन करना श्रेष्ठ माना गया है। मिताहार से तात्पर्य पेट के अर्धभाग भोजन (सात्त्विक), एक चौथाई भाग पानी एवम् अन्य स्वास्थ्यवर्धक तरल पदार्थ, जैसे- फलों का रस, औषधीययुक्त जल इत्यादि एवम् एक चौथाई भाग वायु हेतु स्वतन्त्र प्रवाह के लिए रखने से है।

खाद्य वस्तुएँ पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये। आहार की पवित्रता एवं सात्विकता का प्रभाव हमारे शरीरान्तर्गत पञ्च कोषों पर भी अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक पड़ता है। अतः योग साधना हेतु आहार का सात्विक होना अत्यन्त आवश्यक है। इसका कारण छान्दोग्योपनिषत् में बताया गया है-

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माः सं योऽणिष्ठस्तन्मनः॥

दनः सोम्य मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीपति तत् सर्पिर्भवति ॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ (छान्दोग्योपनिषत्)

अर्थात्- ग्रहण किए गये सात्विक अन्न को तीन भागों में विभक्त किया गया है। भोजन में निहित स्थूल अंश से मल का निर्माण होता है।, माध्यम अंश के द्वारा मांस तथा सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टता होती है। जिस प्रकार दही को मथने पर घृत ऊपर आकर एकत्रित हो जाता है, उसी प्रकार सात्विक अन्न के सूक्ष्म अंश से सात्विक मन का निर्माण होता है।

हठयोगप्रदीपिका में भी आहार के सुपाच्य, सात्त्विक एवं पुष्टिकारक होने पर बल दिया गया है –

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्।

मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्॥

योगाभ्यासी को पुष्टिकारक, सुमधुर, स्निग्ध, गाय के दुग्ध से बने भोज्य पदार्थ, धातु को पुष्ट करने वाले, मन के अनुकूल एवं सात्त्विक भोजन करना चाहिए। - हठयोगप्रदीपिका 1.63

7.5.2 सन्तुलित आहार-

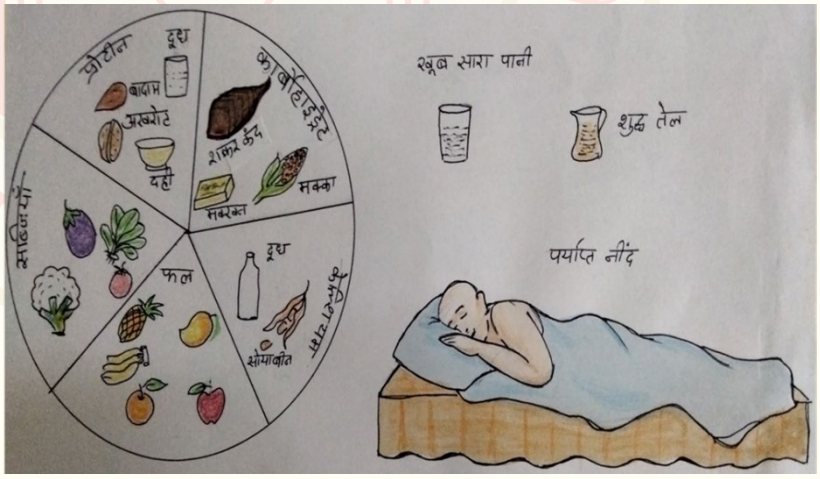

प्रिय विद्यार्थियों, पूर्व अध्ययन बिन्दुओं में हमने आहार की परिभाषा, उनके गुण- कार्य आदि के विषय के बारे में जाना। अतः प्रस्तुत बिन्दु में हम सन्तुलित आहार एवं उसके महत्व को जानेंगे। सन्तुलित आहार का अर्थ आहार के अन्तर्गत निहित, विभिन्न खाद्य पदार्थ एवं उनमें उपस्थित पौषक तत्वों के सन्तुलित परिमाण अथवा मात्रा से है। अतः वह आहार अथवा खाद्य पदार्थ जिनमें सभी पोषक तत्वों, यथा- प्रोटिन, वसा, खनिज, लवण, फाइबर, विटामिन, जलीय तत्त्व आदि का परिमित मात्रा में

समायोजन अथवा सन्तुलन हो तथा जिसके द्वारा मानव शरीर हेतु आवश्यक पौष्टिक तत्वों की आपूर्ति हो सकें, वह सन्तुलित आहार कहलाता है।

सन्तुलित आहार के अन्तर्गत विभिन्न दालें, चावल, हरी सब्जियाँ, विभिन्न अनाजों से निर्मित रोटी, दही, सलाद, फल, गोघृत अथवा दुध से निर्मित पदार्थ आदि को समायोजित किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप हमें एक सम्पूर्ण आहार एवं स्वास्थ्यकर पोषक तत्त्वों की प्राप्ति हो।

सन्तुलित आहार तालिका (किशोर/14-18 वर्ष)		
आहार- द्रव्य	**किशोर बालक प्रतिदिन मात्रा**	**किशोर बालिका प्रतिदिन मात्रा (ग्राम)**
गेंहूँ, चावल आदि अन्न	400	350
दालें	70	60
हरी सब्जियाँ	125	120
आलू आदि कन्द	150	85
फल	150	120
दूध-दही	300	350
घी-तैल आदि	40	35
शर्करा आदि	40	30
नोट- उपर्युक्त भोज्य पदार्थों की मात्रा औसत के रूप में समझनी चाहिए। ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के रहवासी, श्रमिक/कार्यालयीन कार्य करने वाले व्यक्तियों में उपर्युक्त उल्लेखित भोज्य पदार्थों की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है।		

7.6 भोजन से सम्बन्धित आवश्यक दिशा निर्देश –

आचार्य चरक ने आहार ग्रहण के संदर्भ में दस प्रकार के नियमों का निर्देश किया है -

उष्ण स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीतात्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक् ॥ (च०वि० 1/24)

अर्थात् - उष्ण भोजन ग्रहण करना चाहिये ।

- स्निग्ध आहार ग्रहण करना चाहिये।
- मात्रावत् (नियत मात्रा में) आहार लेना चाहिये।
- भोजन के पूर्ण रूप से पच जाने पर ही भोजन करना चाहिये।
- वीर्यविरुद्ध आहार नहीं लेना चाहिये।
- इष्ट देशमें एवं इष्ट उपकरणों (सामग्रियों) में आहार ग्रहण करना चाहिये।
- द्रुतगति से भोजन नहीं करना चाहिये।
- अधिक विलम्बतक भोजन नहीं करना चाहिये।
- वार्तालाप करते हुए नहीं अर्थात् शान्तिपूर्वक तथा हँसते हुए आहार ग्रहण करना चाहिये ।
- अपने आत्मा का सम्यक् विचार कर आहार-द्रव्य में मन लगाकर भोजन ग्रहण करना चाहिये ।

प्रश्नावली

प्रश्न 1) निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए -

1) योगसाधना हेतु उपयुक्त आहार है -

अ) सात्त्विक ब) राजसिक

स) तामसिक द) उपर्युक्त सभी

2) अन्नमय कोश का मुख्य आधार है -

अ) निद्रा ब) ध्यान

स) आहार द) विहार

3) आयुर्वेद के अनुसार आहार से सर्वप्रथम किसका निर्माण होता है-

अ) रक्त ब) रस

स) अस्थि द) मेद

4) शरीर के त्रय उपस्तम्भ के अन्तर्गत निहित है.

अ) वस्त्र ब) व्यायाम

स) आहार द) धनार्जन

5) मानव जीवन के अस्तित्व एवं उत्तम स्वास्थ्य हेतु अत्यन्त आवश्यक है –

अ) सन्तुलित आहार ब) अधिक भोजन

स) अधिक बोलना द) अधिक सोना

प्रश्न-2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1) अहार्यते गलादधो नीयते इति .....। (विहारः / आहारः)

2) आहारशुद्धौ .....। (सत्त्वशुद्धिः/अर्थशुद्धिः)

3) देहो हि ..... सम्भवः। (आहार/निद्रा)

4) स्निग्धा : स्थिराः हृद्याः आहाराः.....। (सत्त्विकप्रियाः/तामसिकप्रियाः)

5) योगाभ्यासी को..... का पालन करना चाहिए। (तामसिक आहार/मिताहार)

प्रश्न 3) सही जोड़ियाँ बनाईए -

1)	जग्धिः	अ) सात्त्विक आहार
2)	योगाभ्यासी	ब) अधपका भोजन
3)	सन्तुलित आहार	स) पञ्चभूतात्मक
4)	तामसिक आहार	द) पोक त्वत्तों का समुचित अनुपान
5)	शरीर	ई) आहार

प्रश्न 4) निम्नलिखित वाक्यों में से सत्य/असत्य बताईए -

1) आहार हमारे शरीर का मुख्य आधार है। (सत्य/असत्य)

2) आहार से हमारा अन्तःकरण प्रभावित नहीं होता। (सत्य/असत्य)

3) द्रुतगति से भोजन नहीं करना चाहिए। (सत्य/असत्य

4) जंक फूड, डिब्बाबन्द भोज्य पदार्थ स्वास्थ्यवर्धक आहार है। (सत्य/असत्य)

5) सन्तुलित आहार स्वास्थ्यकर होता है। (सत्य/असत्य)

प्रश्न 5) अतिलघुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1) निघण्टु शास्त्र के अनुसार आहार की परिभाषा लिरिवए।

2) व्याकरण शास्त्र के अनुसार आहार शब्द की व्युत्पत्ति लिखिए।

3) अमरकोष ग्रन्थ के अनुसार आहार से सम्बन्धित अन्य पर्यायवाची शब्द लिखिए ?

4) शरीर के त्रय उपस्तम्भ के नामों का सन्दर्भ सहित उल्लेख कीजिए?

5) पञ्चभूतों के नाम लिखिए ?

प्रश्न 6) लघुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1) भगवद्गीता के अनुसार आहार के प्रकारों का उल्लेख कीजिए ?

2) शरीरान्तर्गत क्रियाओं में भोजन के महत्व को समझाईए ?

3) मिताहार को परिभाषित कीजिए ?

4) सन्तुलित आहार से क्या तात्पर्य है?

5) योगमय आहार के विषयान्तर्गत हठयोगप्रदीपिका में क्या उल्लेख प्राप्त होता है?

प्रश्न 7) दीर्घउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) आचार्य चरक के अनुसार भोजन से सम्बन्धित आवश्यक दिशा-निर्देशों पर प्रकाश डालिए ?

2) आहार के कार्यों का वर्णन कीजिए ?

3) आहार के गुणों की व्याख्या करें।

4) शास्त्रानुसार आहार के महत्व को समझाइए ?

परियोजना कार्य

- आहारचर्या से सम्बन्धित आचरणीय दिशा-निर्देशों का चार्ट तैयार कर, भोजन कक्ष में चस्पा करें।

इकाई - अष्टम्

वैदिक मन्त्रों पर ध्यान साधना

➢ **हम अध्ययन करेंगे-**

8.1 परिचय

8.2 शिवसंकल्प सूक्त

8.3 मेधा सूक्त

8.4 योगसूत्र (समाधिपाद)

8.1 परिचय -

प्रिय विद्यार्थियों ! प्रस्तुत अध्यायान्तर्गत हम वैदिक मन्त्रों में निहित उच्चारणों पर ध्यानाभ्यास के महत्त्व को जानेंगे। उपनिषत् में निहित समग्र विषयों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- ' वाक्' एवं 'अर्थ' । 'वाक्' से तात्पर्य औपनिषदीय मन्त्रों एवं उनकी सस्वर उच्चारण पद्धति से है, वहीं 'अर्थ' से तात्पर्य ध्यानादि साधनाओं के द्वारा उन मन्त्रों में निहित गूढ़ तत्वों की अनुभूति से है। अतः वाक (मन्त्रोच्चार) एवं अर्थ (मन्त्रों में - निहित गूढ़ दृष्टि का ज्ञान) दोनों ही एक-दूसरे के पूरक तत्व है। इसी तथ्य का उल्लेख हमें महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंशम्' महाकाव्य में भी प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये०

अर्थात् - वाक् (मन्त्रादि) एवं अर्थ (गूढ तत्त्व/ज्ञान) दोनों ही परस्पर जुड़े हुए हैं।

अतः स्पष्ट है कि औनिषदीय मन्त्रों में निहित दिव्य स्पन्दनों की अनुभूति (ज्ञान) तथा उनसे जुड़े शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभों की प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन 'मन्त्र आधारित ध्यान साधनाएँ' कही जा सकती है। आइए! वैदिक सूक्तों एवं मन्त्रों पर ध्यानाभ्यास के द्वारा उक्त लाभों को प्राप्त करें।

8 2.**शिवसंकल्प सूक्त -**

शिवसंकल्प सूक्त शुक्ल यजुर्वेद के अन्तर्गत उल्लेखित है, जिसके जप एवं ध्यानाभ्यास के द्वारा अनेक मनोशारीरिक विकारों से मुक्ति प्राप्त होती है।

वर्ष 2022 को दक्षिण भारत में स्थित आयुर्वेदिक महाविद्यालय के छात्रों पर इसका सकारात्मक प्रभाव देखा गया। शिवसंकल्प सूक्त के सकारात्मक प्रभाव से सम्बन्धित इस शोध के दौरान महाविद्यालय के उन160 छात्रों का चयन किया गया, जिनमें तनाव की प्रकृति अधिक पाई गई। तत्पश्चात् दो बराबर भागों में दो समूहों (80 छात्र प्रति समूह) का निर्माण किया गया। प्रथम समूह के छात्रों को प्रतिदिन प्रातः 6 बजे , 30 मिनट तक शिवसंकल्प सूक्त का ध्यानपूर्वक पाठ एवम जप कराया गया, जो 48 दिनों तक निरन्तर चलायमान रहा। वहीं द्वितीय समूह के छात्रों को सामान्य गतिविधियां कराई गई। 48 दिनों के पश्चात् शिवसंकल्प सूक्त पर पाठ एवं ध्यानाभ्यास करने वाले छात्रों में तनाव की कमी, सकारात्मक विचारों में अधिक वृद्धि, अवसाद तथा एकाकीपन में कमी पाई गई, वहीं द्वितीय समूह में अपेक्षाकृत परिवर्तन नहीं प्राप्त हुए। अतः सपष्ट है कि शिव संकल्प सूक्त के जप एवं ध्यान के द्वारा हमें अनेक शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।

॥ श्रीः ॥

शिवसङ्कल्पसूक्तम्

यज्जाग्ग्रतोदूरमुदैतिदैवन्तदुसुप्तस्यतथैवैति।

दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्न्मेमनः शिवसङ्कल्प्पमस्तु॥1॥

येनकर्म्माण्ण्यपसोमनीषिणोयज्ज्ञेकृण्ण्वन्तिव्विदथेषुधीराः॥

यदपूर्व्वँय्यक्षमन्तः प्रजानान्तन्न्मेमनः शिवसङ्कल्प्पमस्तु॥2॥

यत्प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।

यस्म्मान्नऽऋतेकिञ्चनकर्म्मक्क्रियतेतन्न्मेमनः शिवसङ्कल्प्पमस्तु॥3॥

येनेदम्भूतम्भुवनम्भविष्ष्यत्परिगृहीतममृतेनसर्व्वम्।

येनंयज्ञस्तायतेसप्तहोतातन्न्मेमनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥4॥

यस्मिन्नृचःसामयजूॅंषियस्मिन्प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चित्तंसर्वमोतम्प्रजानान्तन्न्मेमनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥5॥

सुषारथिरश्श्वानिवयन्न्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्व्वाजिनऽइव।

हृत्प्रतिष्ठन्न्यदजिरञ्जविष्ठन्तन्न्मेमनः शिवसंङ्कल्पमस्तु॥6॥

शिवसंकल्पसूक्त शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिन संहिता के 34वें अध्याय के आरंभ के छह मन्त्रों का समाम्नाय है। इस सूक्त की मनोदेवता है। याज्ञवल्क्य ऋषि है । इस कण्डिका षड्का छन्द त्रिष्टुप् है। सूक्त में मन को सामर्थ्यवान्, शुभकर्मों में नियुक्त करना, पापों से निवृत्त कराना इत्यादि मानसिकी प्रार्थना अभिनिहित है। इन ऋतुसंख्याक मन्त्रों का सारांश यथार्थ रूप से देखें।

- हे परमात्मा ! जागृत तथा सुषुप्त आवस्था में जो मन दूर-दूर तक चलायमान रहता है, वही मन इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक ज्योति है अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक है, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।
- जिस मन के द्वारा कर्मनिष्ठ एवं मेधावान जन यागादि श्रेष्ठ कर्म करते है एवं विज्ञानादि से संबद्ध कर्म भी सम्पादित करते हैं, जो अपूर्व है तथा सभी प्राणियों के अंतःकरण में समाहित है, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।
- जो मन असीम ज्ञान से परिपूर्ण, चैतन्य तथा धैर्यस्वरूप है, जो सभी जीवों के अंतःकरण में शाश्वत् प्रकाश-ज्योति के रूप में विद्यमान है, जिसके अभाव में किसी भी कर्म का निष्पादन असंभव है, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।
- जिस मन के माध्यम से भूत, भविष्य व वर्तमान- तीनों कालों का अनुभव होता है, जिसके द्वारा सप्त होतागण यज्ञ कार्य करते हैं, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो !
- हे परमात्मा ! जिस मन में वैदिक ऋचाएं, साम, यजुर्वेद के मन्त्र उस प्रकार प्रतिष्ठित हैं, जिस प्रकार रथ के पहिये में `अरे` लगे होते हैं एवं जिस मन में प्रजाजनों का समग्र ज्ञान निहित है, ऐसा हमारा मन शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

- जिस प्रकार एक कुशल सारथी लगाम के द्वारा घोड़ों को नियन्त्रित करते हुए गन्तव्य तक ले जाता है, उसी प्रकार स्थिर मन भी मनुष्यों को उनके मुख्य लक्ष्य तक पहुंचाता है । ऐसा ओजपूर्ण, द्रुतगामी तथा प्राणियों के हृदय-गुहा में अस्तित्वमान हमारा मन, शुभ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

8.3 मेधासूक्त

॥ ॐ श्रीगुरुभ्यो नमः हरिः ओ (४)म् ॥

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥

मेधा देवी जुषमाणा न आगाद्विश्वाची भद्रा सुमनस्यमाना ।

त्वया जुष्टा नुदमाना दुरुक्तान्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

त्वया जुष्टा ऋषिर्भवति देवि त्वया ब्रह्मा गतश्रीरुत त्वया ।

त्वया जुष्टश्चित्रवँविन्दते वसु सा नो जुषस्व द्रविणो न मेधे ॥

मेधाम्म इन्द्रो ददातु मेधान्देवी सरस्वती ।

मेधाम्मे अश्विनावुभावाधत्ताम्पुष्करस्रजा ॥

अप्सरासु च या मेधा गन्धर्वेषु च यन्मनः ।

दैवीम्मेधा सरस्वती सा माम्मेधा सुरभिर्जुषताꣳ स्वाहा॥

आ माम्मेधा सुरभिर्विश्वरुपा हिरण्यवर्णा जगती जगम्या ।

ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना सा माम्मेधा सुप्रतीका जुषन्ताम् ॥

मयि मेधाम्मयि प्रजाम्मय्यग्निस्तेजो दधातु मयि मेधाम्मयि

प्रजाम्मयीन्द्र इन्द्रियन्दधातु मयि मेधाम्मयि प्रजाम्मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ॥

मेधासूक्त हमारी मस्तिष्क की स्मरण शक्ति, बुद्धिमत्ता तथा एकाग्रता के विकास हेतु प्रार्थना है, जो प्राणी के मस्तिष्क के संरचनात्मक, बौद्धिक, सांवेगिक, भावनात्मक आदि सभी पक्षों को अत्यन्त सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। मानसिक दुर्बलता, अल्प स्मरणशक्ति, तन्द्रा, विभिन्न

मनःकायिक रोगों आदि स्थितियों में मेधासूक्त का पाठ विशेष लाभदायक है। अतः विद्यार्थियों को प्रतिदिन मेधासूक्त का पाठ करना चाहिए।

8.4 पतञ्जलि योग सूत्र

➢ परिचय

पतञ्जलियोगसूत्र, योगदर्शन का मूल-ग्रन्थ है, जिसकी रचना महर्षि- पतञ्जलि द्वारा लगभग चौथी शताब्दी में हुई। भारतीयदर्शन-परम्परा के आस्तिक षड्दर्शनों में से एक 'योगदर्शन' को भी माना है। वैसे तो योग-विद्या अनन्तकाल से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सनातन-विद्या के रूप में व्याप्त है, जिसका ज्ञान हमारे महान् ऋषियों एवं मुनियों को समाधि (योग) - अवस्था में हुआ, परन्तु कालान्तर में महर्षिपतञ्जलि के अवतरण के पश्चात् उन्होंने इस योगरूपी विशुद्ध ज्ञान को एक सुव्यवस्थित लिखित संहिता का रूप प्रदान किया जिसे "पतञ्जलियोगसूत्र" के नाम से जाना जाता है।

सामान्य-भाषा में 'दर्शन' शब्द से तात्पर्य 'देखने' - रूप में ही लिया जाता है, परन्तु दर्शनशास्त्र के रूप में दर्शन शब्द का अर्थ 'आत्मानुभूति एवं बौद्धिक ज्ञान के आधार पर वस्तु अथवा तत्त्व के यथार्थ शुद्ध सात्त्विक स्वरूप को जानने' हेतु आवश्यक 'दृष्टिकोण' से है। इसी प्रकार 'योगदर्शन' योगशास्त्र की अवधारणाओं से युक्त अन्तःदृष्टि के माध्यम से तत्त्वज्ञान का बोध करना है। इसे 'अष्टाङ्गयोग-दर्शन' के रूप में भी जाना जाता है। महर्षिपतञ्जलिकृत योगसूत्र में योग-विषयक सभी का अत्यन्त सरल, स्पष्ट, वैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक तथ्यों के आधार पर प्रतिपादन किया गया है। योगसूत्र को चार पाद (समधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद) में विभाजित करके 195 सूत्र (कहीं-कहीं 196 सूत्र) में प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेजी में इन्हें 'Verses on yoga' कहते हैं। सूत्र का वास्तविक अर्थ 'धागा' होता है। अतः योगसूत्र, योग से सम्बधित विचार एवम् अवधारणाओं की गूँथी हुई माला है, जिसमें निरन्तर तत्त्वबोध का दर्शन निहित है। इसे अत्यन्त सुस्पष्ट एवं व्यवस्थित-क्रम में प्रस्तुत करने में महर्षिपतञ्जलि की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

योगेन चितस्य, पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

अर्थात् मैं मुनियों में श्रेष्ठ उन पतञ्जलि मुनिवर को अञ्जलिबद्ध होकर (हाथ जोड़कर) नमन करता हूँ, जिन्होंने योग से अन्तःकरण के, पद (व्याकरण- महाभाष्य) से वाणी और वैद्यक-ग्रन्थों से शरीर के मलों को दूर किया है।

योगसूत्र को निम्नलिखित चार पादों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार है -

स.क्र	पाद	सूत्र सङ्ख्या
1.	समाधिपाद	51 सूत्र
2.	साधनपाद	55 सूत्र
3.	विभूतिपाद	55 सूत्र
4.	कैवल्यपाद	34 सूत्र
	कुल	**195 सूत्र**

- **समाधिपाद**

इस अध्याय में 51 सूत्र हैं जिनमें योग की परिभाषा (लक्षण), उद्देश्य (फल), वृत्ति के प्रकार एवं परिचय, वृत्ति-निरोध के उपाय (अभ्यास एवं वैराग्य) सम्प्रज्ञात एवम् असम्प्रज्ञात समाधि, ईश्वर एवं ऊँकार (प्रणव) सबीज-निर्बीज समाधि आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

अथ समाधिपादः

अथ योगानुशासनम् ॥1॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥2॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥3॥

वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र ॥4॥

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥5॥

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥6॥

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥7॥

विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥8॥

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥9॥

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥10॥

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥11॥

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥12॥

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥13॥

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥14॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसञ्ज्ञा वैराग्यम् ॥15॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥16॥

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥17॥

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥18॥

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥19॥

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥20॥

तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः ॥21॥

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः॥22॥

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥23॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥24॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्॥25॥

पूर्वेषामपि गुरुःकालेनानवच्छेदात्॥26॥

तस्य वाचकः प्रणवः ॥27॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥28॥

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥29॥

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-

भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥30॥

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥31॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥32॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां-

भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥33॥

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥34॥

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥35॥

विशोका4 वा ज्योतिष्मती ॥36॥

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥37॥

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥38॥

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥39॥

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥40॥

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु-

तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥41॥

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥42॥

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥43॥

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥44॥

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्॥45॥

ता एव सबीजः समाधिः॥46॥

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः॥47॥

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा॥48॥

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्॥49॥

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी॥50॥

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः॥51॥

॥इति श्रीपातञ्जले योगशास्त्रे समाधिनिर्देशो नाम प्रथमः पाद॥

प्रश्नावली

प्रश्न 1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) शिवसंकल्पसूत्र पर ध्यानाभ्यास से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए।

2) योगसूत्र का विस्तृत परिचय दीजिए।

3) शिवसंकल्पसूक्त के भावार्थ को समझाईए।

कण्ठस्थीकरण अभ्यास –

- शिवसंकल्पसूक्त।
- योगसूत्र (प्रथम एवं द्वितीय पाद)
- मेधासूक्त, तैत्तिरीय आरण्यक, महानारायणोपनिषत् 41
- श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय - 1 से 5)

परियोजना कार्य

❖ वैदिक सूक्तों एवं वैदिक मन्त्रों पर ध्यान साधना से सम्बन्धित लेखों, शोधपत्रों आदि का संग्रहण करें तथा उक्त अभ्यास से होने वाले लाभों की चर्चा मित्र, परिवार एवं सामन्यजन से करें ताकि वे भी वैदिक मन्त्रों में निहित जीवनी शक्ति के द्वारा अनेक मनदैहिक रोगों से मक्त हो सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

- बच्चों के लिए योग-शिक्षा- भाग 1 तथा भाग 2 (मुंगेर योग विद्यालय, बिहार)
- पतञ्जलि योग सूत्र (गीताप्रेस, गोरखपुर एवं चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी)
- हठप्रदीपिका (कैवल्यधाम, लोनावला)
- घेरण्डसंहिता, आसन प्राणायाम मुद्रा, बन्ध (मुंगेर योग विद्यालय, बिहार)
- वेदों में योग विद्या, संस्करण 1983 (यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार)
- आरोग्याङ्क, योगाङ्क, जीवनचर्या विज्ञान- गीता प्रेस गोरखपुर।
- Illustrated light on yoga by BKS Iyanger (2005 Edition)
- सम्पूर्ण योग विद्या (राजीव जैन 'त्रिलोक') संस्करण 2015
- आयुर्वेद चिकित्सा, संस्करण 2016 - मालविका प्रकाशन
- योग एवम् आयुर्वेद- सत्यम् पब्लिशिंग हाउस।
- सामान्य योग प्रोटोकॉल (आयुष मंत्रालय, भारत सरकार)
- मेधासूक्त, तैत्तिरीय आरण्यक, महानारायणोपनिषत् 41
- शिवसंकल्पसूक्त, यजुर्वेदसंहिता
- श्रीमद्भागवद्गीता (अध्याय 1 से 5)
- योगसूत्र (समाधिपाद)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in